॥ श्री ॥

devaagamastotra

aa. samantabhadra · प्राकृतम्/हिन्दी · ६३ पद्य · ~९ मिनट

सम्पादकीय —स्वस्तिश्री कमर्योगी पीठाधीश रवीन्द्रकीतिर् स्वामी Ô नमो मंगलं कुयार्त्, ह्रीं नमश्चापि मंगलम्। मोक्षबीजं महामंत्रं, अर्हं नम: सुमंगलम्।। “स्वाध्याय: परमं तप:” आचार्यों ने स्वाध्याय को परम तप कहा है। स्वाध्याय करने से ज्ञान की वृद्धि होती है। नई-नई बातें का ज्ञान होता है। कर्मों की निजर्रा होती है। श्रावक के षट्कतर्व्यें म्ें स्वाध्याय को लिया है- देवपूजा-गु®पास्ति-स्वाध्याय-संयमस्तप:। दानं चेति गृहस्थाणां षट्कमार्णि दिने-दिने।। देवपूजा, गु®आW की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये षट्कायर् श्रावकें को प्रतिदिन करते रहना चाहिए। तभी उनका गृहस्थ धमर् सफल माना है। कसायपाहुोड सूत्रग्रांथ की जयधवला टीका म्ें श्री वीरसेनाचायर् ने कहा है- णाणं पयासओ तवो सोहओ संजमो य गुत्तियरो। तिण्हं पि समाजोए मोक्खो जिणसासणे भणिदं।। अथार्त् ज्ञान स्व-पर प्रकाशक होता है तप से आत्म तöव का शोधन होता है तथा संयम से आत्मा की रक्षा होती है एवं इन तीनें के संयोग-एकीकरण से प्राप्त अवस्था को जिनशासन म्ें मोक्ष की संज्ञा प्रदान की गई है। जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, वतर्मान म्ें १२०० पीच्छीधारी साधुआW म्ें सबसे प्राचीन दीक्षित, ज्ञान म्ें वयोवृद्ध, ३०० ग्रांथें की लेखिका, सरस्वती की प्रतिकृति, न्याय प्रभाकर, सिद्धान्त वाचस्पति परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के द्वारा अनुवादित यह ‘आप्तमीमांसा’ ग्रांथ आपके हाथ म्ें आ रहा है। यह न्याय का ग्रांथ तार्विकर्कविद्वान श्री समन्तभद्र स्वामी द्वारा रचित है। जिन्हेंने भगवान की भी परीक्षा करके, उन्हW कसौटी पर कस करके नमस्कार किया है। जब जिनधमर् के सर्वोदयी सिद्धान्तें के साथ एकांतवादी मतावलम्बियें के द्वारा अन्यायजनक प्रतिपादन होता है, तब अनेकांत स्याद्वाद शैली म्ें जैनाचायर् उसका खण्डन करके न्याय का पक्ष पु° करते हQ। आप्तमीमांसा एक चमत्कारिक काव्य रचना है। इसम्ें आप्त किस प्रकार होना चाहिए ? आप्त म्ें किन गुणें की आवश्यकता है ? इस बात की सुन्दर मीमांसा की गई है। इसलिए इसका आप्तमीमांसा नाम साथर्क है। ‘देवागम’ पद (३) (४) से प्रारंभ होने से इसका देवागम स्तोत्र भी नाम है। प्रारंभ म्ें जब मQ माता जी के पास आया, तब माताजी ने मुझे अ°सहœी के सारांश रटवा कर शाŒी की परीक्षा दिलाई थी, जिसम्ें मQने प्रथम श्रोणी म्ें उत्तीणर्ता प्राप्त की थी। जब पूज्य माताजी ने सन् १९६९-७० म्ें अ°सहœी ग्रांथ का अनुवाद किया, उसी समय इस ग्रांथ का पद्यानुवाद किया था, लेकिन अभी तक इस ग्रांथ के छपने का योग नहाR आ पाया था। अब इस न्याय ग्रांथ के प्रकाशन का योग आया है। आप सभी इस न्याय ग्रांथ को पोढकर अपनी आत्मा के साथ न्याय

करने की प्रि›Ûâया म्ें निष्णात बन्ें, यह मंगल भावना है। वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला निरंतर वृद्धि करते हुए चिरकाल तक इसी प्रकार सत्साहित्य प्रकाशित करता रहे, यही जिनेन्द्र देव से प्रार्थना है। पूज्य माताजी चिरायु हें, स्वस्थ रहW और अपने आगम चक्षु से हम सभी को सम्यग्ज्ञान प्रदान करती रहW, यही मंगल भावना है। N : श्

प्रस्तावना —प्रज्ञाश्रामणी आयिर्का चन्दनामती प्रस्तुत 'देवागम स्तोत्र' नामक कृति का दूसरा नाम 'आप्तमीमांसा' भी है। "देवागम नभोयानचामरादिविभूतय:" इत्यादि शब्दें से अपने द्वारा प्रारंभ किये गये स्तोत्र को श्री समन्तभद्राचायर् ने 'देवागमस्तोत्र' नाम दिया और चूँकि इस पूरे स्तोत्र म्ें उन्हेंने आप्त-भगवान की परीक्षा करके अपनी श्राद्धा और गुणज्ञता के बल पर अर्हन्त भगवान को ही सच्चा आप्त सिद्ध किया है। जिनधर्मी होने के नाते उन्हेंने जिनेन्द्र भगवान को सच्चा आप्त माना हो, एेसा नहाR है, प्रत्युत उन्हेंने सवर्ज्ञता, वीतरागता और हितोपदेशिता इन तीन सवर्जनदुलर्भ गुणें के आधार पर जब भिVा-भिVा मतावलम्बी देवताआW को कसौटी पर परखना शु™ किया तो तीनें गुण एक जगह कहाR भी न दिखने के कारण उन्हW निराश होना पोडा और जब उन्हेंने चार घातिया कर्मों को न° कर देने वाले अर्हन्त भगवान को सूक्ष्मता से देखा तो उनम्ें उपर्युक्त तीनें गुणें के साथ-साथ अनन्तगुणें का भण्डार भरा हुआ पाया, इसलिए अपने को धन्य मानते हुए श्री समन्तभद्राचायर् जैसे महान ताविर्कक विद्वान् ने अर्हन्त भगवान के अपरिमित गुणें से संसार को भी परिचित कराने हेतु ही ११४ कारिका (श्लोक) म्ें मानो इस ग्रांथ की रचना करके सम्पूणर् स्याद्वाद सिद्धान्त को इसम्ें गागर म्ें सागर के समान ही नहाR, राई के अंदर पवर्त भरने के समान महत्तम कायर् कर दिया है। इस पुस्तक म्ें ११४ कारिकाआW म्ें कुल १० परिच्छेद (अध्याय हQ)। जिनम्ें भाव-अभाव, द्वैत-अद्वैत, नित्य-आिनत्य आदि १० प्रकरणें के अन्दर एकान्त पक्षें का निराकरण करके सवर्त्र स्याद्वाद प्रि›Ûâया से वस्तुतòव को समझाया गया है। आप्तमीमांसा स्तोत्र की मूलरचना तòवाथर्सूत्र के मंगलाचरण-मोक्षमागर्स्य नेत्तारं भेत्तारं.......इत्यादि के आधार पर हुई है। अथार्त् परमपूज्य आचायर् श्री उमास्वामी मुनिराज के इस मंगलाचरण को ǔदय म्ें धारण करके श्री समन्तभद्राचायर् ने उन मोक्षमागर् के नेता और कमर् पवर्तें के भेत्ता भगवान को सत्य ही कसौटी पर कसते हुए के समान अपने तवर्क एवं प्रमाणें से पूरा स्तोत्र रचकर अर्हन्त भगवान को सच्चा आप्त सिद्ध कर दिया है। न्याय दर्शन के इन श्लोकें का पाठ करने मात्र से भी आत्मतòव की विशुद्धि होती है और ज्ञानावरणकमर् का क्षयोपशम होता है। देवागमस्तोत्र के पठन-श्रावण का चमत्कार- इस स्तोत्र के

संबंध म्ें एक रोचक घटना जैन ग्रांथें म्ें आई है कि- आहिच्छत्र नामके वैभवशाली नगर म्ें राजा अवनिपाल राज्य करते थे। समस्त राजविद्याआW म्ें पारंगत उस राजा के पास वेद-वेदांग के ज्ञाता पाँच सौ विद्वान् मनीषी थे उनम्ें प्रमुख विद्वान् का नाम था-पात्रकेसरी। अपने कुल और ज्ञान के गवर् के साथ-साथ उनम्ें यह विशेषता थी कि वे अपनी नित्य की सन्ध्यावन्दन आदि ि›ûयाआW को करके ही राजसभा म्ें जाते थे और जाते समय मागर् म्ें भगवान् पाÕर्नाथ के जिनालय म्ें जाकर कौतूहलवश पाÕर्नाथ की प्रतिमा का दर्शन भी कर लेते थे। एक दिन की बात है कि वे जब जिनमंदिर गये तो, वहाँ एक चारित्रभूषण नामके दिगम्बर मुनिराज को इस देवागम स्तोत्र का पाठ करते देखा। उनका सुन्दर स्वर-लय के साथ शुद्ध संस्कृत उच्चारण सुनकर प्रधानविद्वान् पात्रकेसरी जी ने मुनिराज से पूछा-मुनिवर! क्या आप इसका अथर् भी जानते हQ ? मुनि ने कहा-नहाR, मQ इसका अथर् नहाR जानता हूँ, केवल प्रतिदिन इसका पाठ अवश्य करता हूँ। तब पात्रकेसरी बोले-कृपया आप इस स्तोत्र को एक बार और पोढ दीजिए। मुनिराज के द्वारा दुबारा उसे पोढते ही पात्रकेसरी ने उसे कण्ठस्थ कर लिया क्योंकि उनकी धारणाशक्ति बहुत विलक्षण थी, उन्हW एक बार ही ठीक से सुन लेने मात्र से कोई भी पाठ याद हो जाया करता था। अत: देवागम स्तोत्र को भी सुनते ही याद कर लिया और तत्क्षण ही उन्हW दर्शनमोहनीय कमर् के क्षयोपशम से Âोढ श्राद्धान हो गया कि जिनेन्द्र भगवान ने जो जीव-अजीव आदिक पदार्थों का स्व™प कहा है, वही सत्य है, शेष कुछ भी सत्य नहाR है। उसके बाद घर पर जाकर भी वे वस्तुतöव का विचार करते रहे। रात्रि म्ें चिन्तन करते-करते उन्हW कुछ विषय समझ म्ें न आने के कारण उनकी निद्रा भंग हो गई, वे सोचने लगे कि-जैनधमर् म्ें प्रमाण और प्रमेय का लक्षण तो बताया है किन्तु अनुमान का लक्षण तो इसम्ें कहाR आया ही नहाR है। एेसा सोच-सोचकर जैनधमर् के प्रति सन्देह करते हुए उन्हW न जाने कब नाRद आ गई। इधर पात्रकेसरी की व्यग्राता और संदिग्ध स्थिति को देखकर प©ावती देवी का आसन कम्पित हो गया। उन्हेंने तुरंत पात्रकेसरी के स्वप्न म्ें आकर बताया कि-आप चिन्तित न हें, जब आप प्रात:काल जिनमंदिर के दर्शन करने जाएंगे तो भगवान पाÕर्नाथ के पास जाते ही आपकी शंका का समाधान हो जाएगा। (५) (६)

पात्रकेसरी से इस प्रकार कहकर देवी प©ावती पाÕर्नाथ जिनालय म्ें गइË और भगवान पाÕर्नाथ के फणा पर एक श्लोक लिखकर अपने स्थान पर चली गइË। वह श्लोक निम्न प्रकार था- अन्यथानुपपVात्वं, यत्र तत्र त्रयेण किम्। नान्यथानुपपVात्वं, यत्र तत्र त्रयेण किम्।। अथार्त् जहाँ पर अन्यथानुपपत्ति है, वहाँ हेतु के दूसरे तीन ™प मानने से क्या प्रयोजन है ? तथा जहाँ पर अन्यथानुपपत्ति नहाR है वहाँ हेतु के तीन ™प मानने से भी क्या फल है ? पात्रकेसरी को प्रात:काल स्वप्न का स्मरण हो आया और ती›ा जिज्ञासा के साथ वे शीघÇ ही नित्य ›âया से निवृत्त होकर मंदिर गये, वहाँ भगवान पाÕर्नाथ के फण पर उपर्युक्त श्लोक लिखा देखकर उनकी शंका का पूणर् समाधान हो गया, अत: उनके आनन्द का पार नहाR रहा। इस प्रकार विद्वान् पण्डित पात्रकेसरी जिनधमर् के Âढश्राद्धानी पण्डित बनकर जैनशासन के स्याद्वादमत का खूब प्रचार-प्रसार करने लगे। अपने पाँच सौ साथी विद्वानें का जिनधमर् के प्रति विद्वेष देखकर पात्रकेसरी ने राजा अवनिपाल की राजसभा म्ें उन सभी के साथ निभर्यतापूवर्क शाŒाथर् किया, उसम्ें विजयी होकर उन्हेंने सम्यग्दर्शन का खूब प्रभाव पैâलाया। इस प्रकार पात्रकेसरी के सुखकारी उपदेश से प्रभावित होकर राजा अवनिपाल एवं सभी पाँच सौ विद्वानें ने श्राद्धापूवर्क जिनधमर् को स्वीकार किया और पात्रकेसरी के गुण एवं पाण्डित्य की चहुँओर प्रशंसा होने लगी। ये पात्रकेसरी आगे दीक्षा लेकर मुनि बने हQ और उनके द्वारा रचित पात्रकेसरी स्तोत्र भी बहुप्रसिद्ध है। भव्यात्माआW! मQने आपको यह देवागम स्तोत्र की िकिÃात् महिमा बताई है कि जिसके सुनने मात्र से अनेकें भव्यजीव सम्यग्Âष्टि बन गये। इसी देवागम स्तोत्र पर श्रीभúाकलंक आचायर्देव ने ‘अ°शती’ नामक भाष्य ग्रांथ लिखा है जिसम्ें आठ सौ श्लोक (अनु°ाप् छंद) प्रमाण टीका है। पुन: इन्हाR ११४ कारिकाआW वाले देवागम स्तोत्र अपरनाम आप्तमीमांसा स्तोत्र पर आचायर् श्री विद्यानंद स्वामी ने ‘अ°सहœाी’ ग्रांथ रचा, जिसम्ें आठ हजार श्लोकप्रमाण टीका है। इस अ°सहœाी म्ें आचायर्देव ने अ°शती भाष्य की पूरी टीका को भी गूंथा है अत: जो अ°सहœाी के स्वाध्यायी हQ, उन्हW तीन आचार्यों (श्री समंतभद्र स्वामी, श्री अकलंकदेव, श्री विद्यानंद स्वामी) की कृतियें के अध्ययन का लाभ प्राप्त हो जाता है। हिन्दी पद्यानुवाद एवं सारांश न्यायदर्शन की वुंâजी बन गये हQ!- प्रस्तुत कृति म्ें पूज्य गणिनीप्रमुख आयिर्काशिरोमणि श्री १०५ ज्ञानमती माताजी ने समस्त कारिकाआW का हिन्दी पद्यानुवाद, अन्वयाथर्, कारिकाथर् एवं भावाथर् के द्वारा ग्रांथ को अत्यन्त सरल बनाने का पूणर् प्रयास तो किया ही है किन्तु प्रत्येक परिच्छेद के अंत म्ें जो उन्हेंने सारांश प्रस्तुत किए हQ उनने तो न्यायदर्शन के इस ग्रांथ को जीवन्त ही बना दिया है। अत: अ°सहœाी ग्रांथ म्ें प्रवेश पाने के लिए यह कुÀाी के समान बन गया है। यूँ तो पूज्यश्री के द्वारा सन् १९६९-७० म्ें अनुवादित न्याय का सर्वोच्च ग्रांथ “अ°सहœाी’ भी तीन भागें म्ें प्रकाशित

हो चुका है, जिसे पांढकर विद्वान् लोग न्यायतीथर्, न्यायाचायर् जैसी उपाधि परीक्षाएँ उत्तीणर् करते हQ। मेरा मानना है कि जो पाठक पहले इस 'देवागम- स्तोत्र' के पूरे ग्रांथ का आद्योपान्त अध्ययन कर ल्ेंगे, उन्हW अ॰सहœाी समझने म्ें निश्चितर™प से आनन्द की अनुभूति होगी। अन्त म्ें मेरा यही कहना है कि इस ग्रांथ का स्वाध्याय और अध्ययन करके सुधी स्वाध्यायी जन एकान्तमतें के दुराग्राह से हटकर अनेकांत और स्याद्वाद के सर्वोदयी सिद्धान्तें को अपनाएं। सभी के सम्यग्ज्ञान का विकास हो, मिथ्यात्व का विनाश हो इसी भावना के साथ इस ग्रांथ एवं ग्रांथकार आदि के लिए शत- शत नमन। N : श् (७) (८)

दो शब्द —आयिर्का सु›तमती सिद्धान्त नत्वार्हतश्चाप्तान्, आदिबÇ्रा स वंद्यते। युगादौ सृि°कतार् य:, ज्ञानज्योति: स मे दिश।। भगवान महावीर के शासनकाल म्ें एक से बांढकर एक महापु®षें ने जन्म लिया हQ। आचायर् श्री जिनसेन स्वामी, श्री वुंâदवुंâद देव, श्री नेमिचन्द्राचायर्, श्री वीरसेन स्वामी, श्री समंतभद्र स्वामी, श्री अकलंक देव, श्री विद्यानंद स्वामी आदि महान-महान ग्रांथें के रचयिता, न्याय के ताविर्कक विद्वान् हुए हQ, जिन्हेंने अपनी विद्वत्ता के द्वारा जिनधमर् की विशेष प्रभावना की है। ‘आप्तमीमांसा’ अपरनाम देवागम स्तोत्र के रचयिता श्री समन्तभद्र स्वामी हQ, जिन्हेंने ११४ कारिकाआW म्ें इस स्तोत्र की रचना की है। इन कारिकाआW का पद्यानुवाद एवं अथर् पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने सरल सुन्दर भाषा म्ें किया है। जिनस्तोत्र संग्राह पुस्तक म्ें पूज्य माताजी ने संस्कृत म्ें अ°सहœी वन्दना म्ें बहुत ही सुन्दर २४ श्लोकें की रचना की है- सवË जानंति सवर्ज्ञा: केवलज्ञान चक्षुषा। तान् नौमि पूणर्ज्ञानाप्त्यै, भक्तिरागेण कोटिश:।।१६।। दशाध्याये परिच्छिVो, प्रोक्ता: स्याद्वादप्रि›âया:। नमाम्य°सहœाR तां, वाक्शुद्धŸौ नयसिद्धये।।१७।। देवागमस्तवोद्भूता, समंतात् भद्रकारिणी। अकलंकवच: पूता विद्यानंदं तनोतु मे।।२०।। २४ श्लोकें म्ें पूज्य माताजी ने देवागम स्तोत्र, अ°शती एवं अ°सहœी के सार को भर दिया है। हमने इन महान आचार्यों को देखा नहाR लेकिन वतर्मान म्ें इन आचार्यों का अनुसरण करने वाली, कठिन से कठिन एवं सरल से सरल संस्कृत भाषा म्ें ग्रांथ रचना करने वाली, जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, युग- प्रवतिर्का, ३०० ग्रांथें की लेखिका, चारित्रचन्द्रिका गणिनीपÇमुख श्री ज्ञानमती माताजी के दर्शन सुलभ हQ, यह हम सभी के लिए, सम्पूणर् जैन समाज के लिए बांडे ही गौरव की बात है। बीसवाR सदी के प्रथमाचायर् चारित्रच›âवर्ती आचायर् श्री शांतिसागर महाराज के प्रथम पóशिष्य चारित्रचूांडामणि आचायर् श्री वीरसागर जी महाराज की शिष्या “यथा नाम तथा गुण को धारण करने वाली” आयिर्काशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने सन् १९६९-७० म्ें अ°सहœी अपरनाम ‘क°सहœी’ की ‘स्याद्वादचिंतामणि’ हिन्दी टीका लिखकर न्याय के क्षेत्र म्ें एक कीतिर्मान स्थापित किया है। पूज्य माताजी ने स्वाध्याय, मनन-चिंतन करके, मुनियें, आयिर्काआW, शिष्य-शिष्याआW को पांढा-पांढाकर जैनागम का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया है। ‘कातंत्र ™पमाला’ व्याकरण™पी बीज से ज्ञान साधना™प वटवृक्ष प्रस्पुâटित किया है। गोम्मटसार, न्यायदीपिका, प्रमेयकमलमातर्ण्ड, अ°सहœी, तòवार्थर्राजवातिर्क, सवार्थर्सिद्धि, अनगारधमार्मृत, मूलाचार, त्रिलोकसार आदि ग्रांथें को पांढा-पांढाकर अल्प समय म्ें विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया है। हिन्दी, प्राकृत, संस्कृत, मराठी एवं कVांड भाषा का आपको ज्ञान है। आपने कVांड म्ें बहुत सुन्दर बारह भावना लिखी है- अरसर वैभव सुरर विमानवु धन यौवन संपदवेल्ला। निरतवु नेनेदरे इन्द्रिय भोगवु

य्ेंदु निल्लदु स्थिरवल्ला।। मेरे युव कामन बिल्लिन तेरदलि नोडलु मत्तल्लेनिल्ला। स्वात्म स्वभावव साधिसि संतत मुक्तियुवैâयोUगिहुदल्ला।।१।। आपने जैनभारती, ज्ञानामृत, त्रिलोकभास्कर, प्रवचन निर्देशिका जैसे प्रौिढ ग्रांथ लिख्ें। प्रतिज्ञा, परीक्षा, जीवनदान, आटे का मुगार्, पति›ता आदि उपन्यास लिख्ें। द्रव्यसंग्राह, रत्नकरण्डश्रावकाचार ग्रांथ का हिन्दी पद्यानुवाद किया। बाल- विकास, बाल भारती, नारी आलोक आदि पुस्तव्ेंâ जैन वा*मय का ज्ञान कराने वाली हQ। आपने अध्यात्म, व्याकरण, न्याय, सिद्धान्त, बाल साहित्य, उपन्यास, जैन भूगोल आदि चारें अनुयोग™प विपुल साहित्य का सृजन किया है। इन्द्रध्वज विधान, कल्पद्रुम, सवर्तोभद्र, सिद्धच›â, त्रैलोक्य विधान आदि विधानें की रचना करके भक्तें को भक्ति रस के माध्यम से कर्मों को निर्जीण करने का एवं पुण्य को प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया है। आपने षट्खण्डागम सूत्र ग्रांथ पर संस्कृत म्ें "सिद्धान्त चिंतामणिटीका" १६ पुस्तकें की ३१०० पृ म्ें मात्र १२ वर्षो म्ें लिखकर एक महान से महान कायर् किया है। आपको समाज ने 'सिद्धांत च›âÕारी' की उपाधि से अलंकृत किया है। क्येंकि आपने छह खण्ड ™प द्वादशांग को-जिनवाणी को आत्मसात (९) (१०)

किया है। प्रत्येक कायर्, चाहे साहित्यसृजन हो, तीथर् का निमार्ण हो, आगम के आधार से ही किया है। शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरें का आयोजन, राº^ीय-अंतरार्º^ीय सेमिनार, तीथËकरें की जन्मकल्याणक भूमियें का विकास, जम्बूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक की रचना, आपकी अपूवर् देन है। ज्ञानज्योतिरथ, समवसरणरथ, महावीरज्योतिरथ प्रवतर्न के माध्यम से जैनधमर् का विशेष प्रचार-प्रसार हुआ है। प्रज्ञाश्रामणी पूज्य आयिर्का श्री चंदनामती माताजी ने आपके विराट व्यक्तित्व को देखते हुए सैकांडें भजन रच डाले हQ। एक भजन म्ें लिखा है- साहित्य सृजन के द्वारा तुमने इतिहास बनाया, शुभ ज्ञान ज्योति के द्वारा जग म्ें प्रकाश पैâलाया। ज्ञान की ज्योति नम लो रे......... न्याय का ग्रांथ इस ‘आप्तमीमांसा’ की प्रूफरीडिंग के माध्यम सेमेरा भी अच्छा स्वाध्याय हुआ है और यह ज्ञात हुआ है कि इस ग्रांथ की रचना मोक्ष सुख के इच्छुक भव्य पु®षें के लिए की गई है। क्येंकि सम्यक् और मिथ्या उपदेश विशेष क ी जानकारी होने से मिथ्यात्व का त्याग और सम्यक्त्व का ग्राहण शक्य है, अन्यथा नहाR। वास्तव म्ें देखा जाये तो ६० वषर् के दीक्षित जीवन म्ें पूज्य माताजी के द्वारा जो अनुपम कायर् किए गये हQ, वे सभी अनूठे हQ। पूज्य माताजी दीघार्यु हें, स्वस्थ रहW, इन्हाR मंगल भावनाआW के साथ पूज्य माताजी के पावन चरणें म्ें कोटि-कोटि नमन। N : श् (११) (१२) राº^गौरव, गणिनीप्रमुख, आयिर्काशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय -प्रज्ञाश्रामणी आयिर्का चन्दनामती भारत की वसुन्धरा सदैव से तपस्या, त्याग एवं संयम की भूमि रही है। भगवान त्र+षभदेव, राम, महावीर की यह भूमि आज भी एेसे महान व्यक्तित्वें से सुशोभित है कि जो अपने जीवन म्ें ही एेतिहासिक बन जाते हQ। एेसा ही एक महान व्यक्तित्व है-वतर्मान दिगम्बर जैन समाज की सबसे प्राचीन दीक्षित साध्वी-पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी। सन् १९३४ म्ें शरदपूणिर्मा के दिन जिला बाराबंकी (उ.प्र.) के टिवैâतनगर ग्राम म्ें माता मोहिनी एवं पिता श्री छोटेलाल जैन के दाम्पत्य जीवन के प्रथम पुष्प के ™प म्ें कन्यारत्न ‘मैना’ का जन्म हुआ। छोटी सी आयु से ही अपनी माँ की प्रेरणावश जैन ग्रांथें के स्वाध्याय द्वारा इस बालिका ने अपने वैराग्य को भलीभाँति Âढ कर लिया और १८ वषर् की अल्प आयु म्ें शरदपूणिर्मा के दिन ही परिवार के प्रबल विरोध के बावजूद भी आजन्म बÇýाचयर्›ीत एवं गृहत्याग के कठिन नियम धारण कर लिये। सन् १९५३ म्ें श्री महावीर जी (राज.) अतिशय क्षेत्र पर आचायर्रत्न श्री देशभूषण जी महाराज से आपने क्षुल्लिका दीक्षा लेकर ‘वीरमती’ नाम प्राप्त किया। पुन: १९५६ म्ें बीसवाR सदी के प्रथम

आचायर् चारित्रच›âवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज की आज्ञानुसार उनके प्रथम पट्टाधीश शिष्य आचायर्श्री वीरसागर जी महाराज से माधोराजपुरा (राज.) म्ों आपने आयिर्का दीक्षा लेकर ‘ज्ञानमती’ नाम प्राप्त किया। ज्ञान प्राप्ति हेतु अध्ययन- अध्यापन एवं स्वाध्याय के प्रति आपकी विशेष आभि®चि देखकर ही गु®वर ने आपको यह नाम प्रदान किया था। दीक्षा के प्रारंभिक वर्षों म्ों आपने सवर्प्रथम संस्कृत व्याकरण एवं जैन आगम का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया तथा साथ ही सहœानाम मंत्रें की रचनापूवर्क अपनी लेखनी का शुभारंभ भी कर दिया। ६० वर्षों से साधनारत इन महान साध्वी ने अब तक २५० से भी आधिक गं्रथें का सृजन किया है। संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत, कVांड इत्यादि भाषाआW की प्रकाण्ड विदुषी पूज्य माताजी की काव्य प्रतिभा भी आद्वितीय है। जिनेन्द्र भक्ति के रस से भरे हुए न जाने कितने ही पूजन-विधानें की रचना पूज्य माताजी ने अपनी लेखनी द्वारा की है। सन् १९९५ म्ों डा@. राम मनोहर लोहिया अवध विÕाविद्यालय (पैâजाबाद) ने पूज्य माताजी की विराट ज्ञान साधना को देखकर जैन इतिहास म्ों प्रथम बार किसी साध्वी को ‘डी.लिट्.’ की मानद् उपाधि प्रदान की। पुन: इसके उपरांत ८ अप्रैल २०१२ को पूज्य माताजी के ५७व्ों आयिर्का दीक्षा दिवस के अवसर पर तीथËकर (१३) (१४) महावीर विÕाविद्यालय, मुरादाबाद म्ों विÕाविद्यालय का प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह आयोजित करके विÕाविद्यालय द्वारा पूज्य माताजी के करकमलें डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की गई। कमर्ठता, Âढसंकल्प, अनुशासन के साथ-साथ वात्सल्य की प्रतिबिम्ब पूज्य माताजी की प्रेरणा से कौरवें-पाण्डवें की राजधानी हस्तिनापुर (मेरठ-उ.प्र.) म्ों जैन भूगोल की आद्वितीय रचना-‘जम्बूद्वीप’ का निमार्ण हुआ है। प्रथम तीथËकर भगवान त्र+षभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक भूमि-प्रयाग् (इलाहाबाद) म्ों ‘तीथËकर त्र+षभदेव तपस्थली तीथर्’ का भव्य निमार्ण भी पूज्य मा ताजी की सृजनशक्ति का ही सुन्दर प्रतिफल है। इसी प्रकार भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्ड लपुर (नालंदा) म्ों नंद्यावतर् महल तीथर् का भव्य निमार्ण पूज्य माताजी की प्रेरणा एवंससंघ सानिध्य म्ों मात्र २२ माह के अल्प अन्तराल म्ों हुआ है। २६०० वषर् पूवर् कुण्डलपुर (नालंदा) की जो धरती आहिंसा के अवतार भगवान महावीर के जन्मकल्याणक से महान उत्साह एवं हषर् को प्राप्त हुई थी वह काल के थपोंडें से भले ही विस्मृत जैसी हो गयी हो, परन्तु जैन समाज के श्राद्धालुआW का वहाँ जाना हमेशा से जारी रहा और अब पूज्य ज्ञानमती माताजी के महान उपकार स्व™प यह जन्मभूमि पुन: इस प्रकार जगमगा उठी है कि आने वाला भविष्य सदैव इसकी चमक से प्रभावित रहेगा। पूज्य माताजी की प्रेरणा से जम्बूद्वीप

ज्ञानज्योति (१९८२) एवं भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ (१९९८) का देशव्यापी प्रवतर्न सम्पV्ा हुआ एवं कुण्डलपुर से प्रवतिर्त भगवान महावीर ज्योति रथ (२००३) का प्रवतर्न सफलतापूवर्क सम्पV्ा हुआ है। इन रथें के द्वारा सम्पूणर् भारत म्ें आिहंसामयी सिद्धान्तें की व्यापक प्रभावना हुई। शैक्षणिक क्षेत्र म्ें अनेकानेक रा°^ीय एवं अंतरार्°^ीय संगोि‰यॉं-सेमिनार इत्यादि पूज्य माताजी की प्रेरणा द्वारा समय-समय पर सम्पV्ा हुए हQ तथा आज भी हो रहे हQ। पूज्य माताजी के विराट व्यक्तित्व का आिभनंदन करने के लिए समाज ने उन्हW समय-समय पर युगप्रवतिर्का, चारित्रचन्द्रिका, न्याय प्रभाकर, आयिर्कारत्न, गणिनीप्रमुख, युगनायिका, रा°^गौरव, विÕ्ाविभूति, वाग्देवी, भारतभूषण जैसी उपाधियें से सम्मानित करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया है। वतर्मान म्ें महारा°^ प्रान्त के मांगीतुंगी पवर्त पर विÕ्ा की सबसे ऊँची १०८ पुâट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा का निमार्ण पूज्य माताजी की प्रेरणा से हो रहा है। २४ घंटे म्ें एक बार आहार लेकर, केशलोंच एवं पदविहार जैसी कठिन साधना करते हुए बÇ्ाचयर् एवं चारित्र के तेज को सवर्त्र बिखेरने वाली पूज्य ज्ञानमती माताजी भारतीय संस्कृति की महान धरोहर हQ, जिन्हेंने १५ अप्रैल २००६ को अपनी आयिर्का दीक्षा के ५० वर्षों को पूणर् किया है। २१ दिसम्बर २००८ को जम्बूद्वीप- हस्तिनापुर म्ें पूज्य माताजी की प्रेरणा से आयोजित विÕ्ाशांति आिहंसा सम्मेलन का उद्घाटन भारत की प्रथम महिला रा°^पति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलें से हुआ और सन् २००९ "शांतिवषर्" के ™प म्ें घोषित हुआ। रा°^पति जी ने जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर म्ें पधारकर पूज्य माताजी का आशीवार्द प्राप्त किया। दीघर्कालीन तपस्विनी ए्ेसी पूज्यनीया माताजी ने सन् २००९ म्ें अपने जीवन के ७५ वषर् पूणर् किए जिसे सन् २००८ से २००९ तक रा°^ीय स्तर पर "हीरक जयंती महोत्सव वषर्" के ™प म्ें मनाया गया। वास्तव म्ें आज के कलिकाल म्ें भी आध्यात्मिक ज्ञान, चारित्र, साधना एवं मोक्षपथ को साकार करने वाले गु®आW का जितना आिभनंदन किया जाये, उतना कम है। जो बिना कुछ कहे अपनी मुद्रा द्वारा ही शांति, संयम, सदाचार का उपदेश देते हQ ए्ेसे साधु इस भारत वसुन्धरा की शान हQ और हम जैसे जो भी प्राणीगण परमसौभाग्य से उनके चरणें म्ें आश्राय प्राप्त कर लेते हQ्, वे भी अपने जीवन को सही अर्थों म्ें सार्थक कर लेते हQ। ए्ेसे चतुर्मुखी प्रतिभा की धनी पूज्य माताजी के श्रीचरणें म्ें भावभीना कोटिश: नमन है। N : श्

(१५) (१६) दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान का परिचय —स्वस्तिश्री कमर्योगी पीठाधीश

रवीन्द्रकीतिर् स्वामी जिस हस्तिनापुर म्ें इस संस्थान द्वारा रा°^ऽय स्तर पर कायर् कलाप चल रहे हQ, प्रथम तीथEंकर भगवान त्र+षभदेव की पारणा, कौरव-पाण्डव की राजधानी, दर्शन प्रतिज्ञा म्ें प्रसिद्ध मनोवती का इतिहास आदि पौराणिक कथानकें से जुांडी वह हस्तिनापुर नगरी एक एेतिहासिक एवं पौराणिक नगरी है। सन् १९७२ म W पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के नाम से दिल्ली म्ें इस संस्था का जन्म हुआ। सन् १९७४ से हस्तिनापुर म्ें निमार्ण कायर् प्रारंभ किया गया और अब तक वहाँ अनेक भव्य रचनाएं, मंदिर, कमरे, फ्लैट, कोठियां, भोजनालय, टंकी आदि बन चुके हQ। निमार्ण के आfतरिक्त संस्थान के द्वारा शिक्षा एवं धमर् प्रचार-प्रसार हेतु शिक्षण शिविर, सेमिनार, अंतरार्°^ऽय सेमिनार, सम्मेलन आदि के आयोजन भी होते रहते हQ। पूज्य माताजी एवं आयिर्का श्री चंदनामती माताजी द्वारा लिखित चारें अनुयोगें एवं धमर्प्रभावना के समाचारें से सहित सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका का प्रकाशन सन् १९७४ से बराबर निबार्ध गति से चल रहा है। संस्थान के अंतगर्त ही सन् १९७२ म्ें स्थापित वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला से ३०० से भी आfधक ग्रांथ लाखें की संख्या म्ें प्रकाशित हो चुके हQ। यहां जम्बूद्वीप पुस्तकालय, णमोकार महामंत्र बQक, गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ आदि के ôारा धामिर्क शैक्षणिक एवं पारमाथिर्क कायर्›ऽâम चलते रहते हQ। सन् १९७५ से प्रारंभ पंचकल्याणकें म्ें अब तक अनेक पंचकल्याणक प्रतिऽऽएं एवं प्रति ५ वर्षों म्ें होने वाले जम्बूद्वीप महामहोत्सव म्ें से ४ महोत्सव हो चुके हQ। इस संस्थान द्वारा जहाँ पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् १९८२ म्ें दिल्ली से स्व. प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा उद्घाटित जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति रथ का १०४५ दिनें तक सम्पूणर् भारत म्ें भüमण एवं हस्तिनापुर म्ें उसकी अखण्ड स्थापना हुई, सन् १९९८ म्ें प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित भगवान त्र+षभदेव समवसरण श्रीविहार द्वारा आEहसामयी सिद्धान्तें का प्रचार-प्रसार हुआ। वहाR भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) से महामहिम राज्यपाल बिहार प्रान्त द्वारा प्रवतिर्त "भगवान महावीर ज्योति" रथ के भारत भÇमण से जनमानस भगवान महावीर के विषय म्ें आगमसम्मत ज्ञान से परिचित हुआ है। जम्बूद्वीप स्थल पर समय-समय पर भव्य दीक्षाएं भी सम्पVा हुई हQ। इसी संस्थान द्वारा दिल्ली के लालकिला मैदान म्ें ४ फरवरी सन् २००० को प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी द्वारा उद्घाटित "भगवान त्र+षभदेव अंतरार्°^ऽय निवार्ण महामहोत्सव" सम्पूणर् देश एवं विदेशें म्ें मनाया गया। जिसके अंतगर्त अनेक संगोि‰याँ, भगवान त्र+षभदेव कीतिर्स्तंभ निमार्ण आदि कायर्›ऽâम हुए। सन् २०००- २००१ म्ें संस्थान द्वारा पूज्य

माताजी की प्रेरणा से भगवान त्र+षभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान भूमि प्रयाग-इलाहाबाद म्ें बनारस हाइवे पर “तीथËकर त्र+षभदेव दीक्षातीथर्” का नवनिमार्ण हुआ है तथा ६ अप्रैल सन् २००१ को ही प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित रा°^य स्तर पर सम्पूणर् भारतवषर् म्ें मनाए जाने वाले भगवान महावीर २६००वाँ जन्मकल्याणक महोत्सव वषर् म्ें पूज्य माताजी द्वारा रचित “विÕ्शांति महावीर विधान” का विराट आयोजन प्रथम रा°^य N : श् आयोजन के ™प म्ें राजधानी दिल्ली के फिरोजशाह कोटला मैदान म्ें अक्टूबर २००१ म्ें सम्पV्ा हुआ। उसी जन्मकल्याणक महोत्सव के अंतगर्त सन् २००३-२००४ म्ें संस्थान द्वारा पूज्य माताजी की प्रेरणा से भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर का विकास कायर् दु्Çतगति से हुआ है। “नंद्यावतर् महल” नामक तीथर् परिसर वहाँ का विशेष दर्शनीय स्थल पयर्टकें के लिए आकषर्ण का केन्द्र है। कुण्डलपुर विकास संपV्ा होने के पहले ही पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने आगामी वषर् २००५ को “भगवान पाÕ्र्नाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहœ्ाब्दि महोत्सव वषर्” के ™प म्ें मनाने का सारे देश को आ£ान किया और प्रेरणा दी। तदुपरांत पूज्य माताजी ससंघ ने कुण्डलपुर से १४ नवम्बर २००४ को भगवान पाÕ्र्नाथ की जन्मभूमि बनारस के लिए विहार किया और पूज्य माताजी के सानिध्य म्ें बनारस म्ें भगवान पाÕ्र्नाथ की जन्मजयंती ६ जनवरी २००५ को इस पाÕ्र्नाथ महोत्सव वषर् का जोर-शोर के साथ सारे देश की जनता के बीच उत्तरप्रदेश के लोक निमार्ण मंत्री-श्री शिवपाल सिंह यादव एवं अन्य अतिथियें द्वारा उद्घाटन किया गया। इस महोत्सव वषर् के अंतगर्त सवर्प्रथम लम्बे समय से प्रतीक्षित भगवान श्रेयांसनाथ की जन्मभूमि सिंहपुरी-सारनाथ म्ें उनकी विशाल प्रतिमा का पंचकल्याणक प्रति महोत्सव भव्यता के साथ सम्पV्ा हुआ। तदुपरांत टिवैâतनगर म्ें भगवान महावीर पंचकल्याणक प्रति महोत्सव म्ें पधारे उत्तरप्रदेश के लोकप्रिय मुख्यमंत्री माननीय श्री मुलायम सिंह यादव ने भगवान पाÕ्र्नाथ की प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्ज्वलित कर ‘पाÕ्र्नाथ वषर्’ का शुभारंभ किया और भगवान पाÕ्र्नाथ की वह प्रतिमा “पाÕ्र्नाथ दि. जैन इण्टर कालेज” के परिसर म्ें स्थापित की गई है। इसी ë्ाृंखला म्ें सारे देश म्ें ३ वषर् तक भगवान पाÕ्र्नाथ तृतीय सहœ्ाब्दि महोत्सव विविध आयोजनें के साथ मनाया गया, जिसका समापन भगवान पाÕ्र्नाथ की केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीथर् पर तिखाल वाले बाबा के महामस्तकाभिषेकपूवर्क ४ जनवरी २००८ को हुआ। २१ दिसम्बर २००८ का दिवस संस्थान के लिए विशेष गौरवपूणर् एवं ए्तिहासिक रहा, जब गणतंत्र भारत की महामहिम

रा°^पति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटिल पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का शुभाशीवार्द लेने जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर पधाराR और विÕाश ि◌ति आिहंसा सम्मेलन का उद्घाटन किया। इस प्रकार आप सबके सहयोग से संचालित हो रहा दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान अपनी चतुर्मुखी योजनाआW से समाज को सदैव लाभान्वित करता रहे यही मंगल कामना है।

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (२) अथ प्रथम: परिच्छेद: देवें की पूजा आदि से आप महान नहाR हQ देवागम - नभोयान - चामरादि - विभूतय:। मायाविष्वपि Âश्यन्ते, नातस्त्वमसि नो महान्।।१।। भगवन्! पंचकल्याणक म्ें तव, देवें का आगमन महान। केवलज्ञान प्रगट होने पर, नभ म्ें अधर गमन सुखदान।। छत्र, चमर आदिक वैभव सब, मायावी म्ें भी दिखते। अत: आप हम जैसें द्वारा, पूज्य-वंद्य नहिं हो सकते।।१।। अन्वयाथर्- (देवागम नभोयान चामरादिविभूतय:) हे भगवन्! आपके जन्मोत्सव आदि म्ें देवें का आना, केवलज्ञान होने के बाद आकाश म्ें गमन और चमर, छत्र आदि समवसरण की विभूतियाँ ये सब (मायाविष्वपि Âश्यन्ते) मायावी इंद्रजालिया आदि जनें म्ें भी देखी जाती हQ (अत: त्वं न: महान् न आिस) अतएव भगवन्! आप मेरे लिए महान-वंद्य नहाR है।।१।। कारिकाथर्- आपके जन्मकल्याणक आदिकें म्ें देवें का आगमन, आप का आकाश मागर् म्ें गमन एवं समवसरण म्ें चामर, छत्र आदि अनेक विभूतियें का होना आदि यह सब बा¢ वैभव मायावी विद्याधर मस्करी आदिकें म्ें भी पाया जा सकता है अत: हे भगवन्! हम लोगें के लिए आप महान नहाR हQ-स्तुति करने योग्य नहाR हQ।।१।। ` विग्राह आदि महोदय से भी आप महान नहाR हQ अध्यात्मं बहिरप्येष, विग्राहादि-महोदय:। दिव्य: सत्यो दिवौकस्स्व-प्यस्ति रागादिमत्सु स:।।२।। विग्राह आदि महोदय भगवन्! तव अध्यात्म क्षुधादि रहित। बा¢ महोदय कुसुमवृि°, गंधोदक आदिक देव रचित।। दिव्य, सत्य ये वैभव फिर भी, रागादिक युत सुरगण म्ें। पाये जाते हQ, हे जिनवर! अत: आप नहिं पूज्य हम्ें।।२।। अन्वयाथर्- (एष अध्यात्मं बहिरपि विग्राहादि महोदय:) यह अंतरंग और बहिरंग शरीर आदि का जो महोदय है (दिव्य: सत्य:) जो कि अमानुषिक और सत्य है (स: रागादि मत्सु दिवौकस्सु आिप आिस्त) वह महोदय राग-द्वेष आदि सहित देवें म्ें भी पाया जाता है। इसलिए भी आप हमारे लिए महान नहाR हो सकते हQ।।२।। कारिकाथर्- अंतरंग विग्राह आदि महोदय-निरन्तर पसीनारहितपना आदि एवं बहिरंग-गन्धोदक वृि° आदि महोदय जो कि दिव्य हQ, सत्य अथार्त् वास्तविक हQ। इस प्रकार अन्तरंग, बहिरंग शरीर आदि महोदय भी मस्करीपूरण आदि म्ें न होते हुए भी रागद्वेषयुक्त देवें म्ें पाये जाते हQ, इसलिए भी हे भगवन्! आप

महान नहाR हQ।।२।। तीथËकरत्व हेतु से भी आप महान नहाR हQ तीथर्कृत्समयानां च, परस्परविरोधतः। सर्वेषामाप्तता नास्ति, कश्चिदेव भवेद्गु®:।।३।। सभी मतो म्ें तीथËकर, के आगम म्ें दिखे विरोध। सभी आप्त सच्चे परमेÕर, नहिं हो सकते अतः जिनेश!।। इन सबम्ें से कोई एक ही, आप्त-सत्यगु® हो सकता। चित्-सवर्ज्ञ देव परमात्मा, सòवहितंकर जगभतार्।।३।। अन्वयाथर्- (तीथर्कत्समयानां च) सभी तीथËकरें के आगमें म्ें (परस्पर विरोधतः) परस्पर म्ें विरोध पाया जाता है अतः (सर्वेषां आप्तता नास्ति) सभी आप्त नहाR हो सकते हQ (कश्चिदेव भवेत् गु®:) इन सबम्ें से कोई एक ही महान गु® हो सकता है।।३।। कारिकाथर्- परमागम लक्षण तीथर् को करने वाले तीथर्कृत् कहलाते हQ। देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (३) (४) उनके समय अथार्त् आगमें म्ें परस्पर म्ें भिVा-भिVा आभिप्राय होने से विरोध पाया जाता है, अत: सभी को आप्तपना (सवर्ज्ञपना) नहाR है, अथार्त् मीमांसक, सांख्य, सौगत, नैयायिक, चावार्क, तत्वोपप्लववादी, यौग, बÇÿाद्वैतवादी, ज्ञानाद्वैतवादी आदि अनेक एकान्तमतावलम्बी वादियें म्ें सभी के ही सवर्ज्ञता नहाR हो सकती है, इसलिए कोई एक गु®-परमात्मा अवश्य है।।३।। भावाथर्- श्री समंतभद्र स्वामी 'मोक्षमागर्स्य नेतारं' आदि मंगलाचरण का आधार लेकर सवर्ज्ञ भगवान की परीक्षा करने म्ें प्रवृत्त होते हQ। तब वे भगवान से मानें प्रश्नोत्तर ही कर रहे हQ अत: पहली कारिका म्ें तो स्वामी ने देवागम आदि वैभव से भगवान को पूज्य नहाR माना, दूसरी कारिका म्ें शरीर आदि के विशेष महोद य से भी पूज्य नहाR माना है। पुन: तीसरी कारिका म्ें तीथËकरत्व हेतु से भी पूज्य नहाR माना है। इसी कारिका म्ें परस्पर विरोध शब्द से श्री विद्यानंद स्वामी नेअ°सहœाी ग्रांथ म्ें मीमांसक आदि के वेदें म्ें नियोगवाद, विधिवाद आदि के निमित्त से विश ेष™प से परस्पर के विरोध को स्प° किया है एवं जो सवर्ज्ञ को ही नहाR मानते हQ औ र वेदें को अपौ®षेय मानते हQ तथा चावार्क और शून्यमतवादी भी आत्मा एवं परल् ेक का आिस्तत्व न मानने से सवर्ज्ञ का अभाव कहते हQ। इन सभी को समझाते हुए इन के मतें का खण्डन करके ठीक से सवर्ज्ञ का आिस्तत्व सिद्ध किया है। दोषें तथा आवरणें का पूणर्तया अभाव संभव है दोषावरणयोहार्नि-निर्:शेषास्त्यतिशायनात्। क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो, बहिरन्तमर्लक्षय:।।४।। किसी जीव म्ें सवर् दोष अ®, आवरणें की हानि नि:शेष। हो सकती है क्येंकि जगत म्ें, तरतमता से दिखे विशेष।। रागादिक की हानि किन्हाR म्ें, दिखती है कुछ अंशें से। जैसे हेतू से बा(्यांतर, मल क्षय होता स्वर्णों से।।४।। अन्वयाथर्- (क्वचित्) किसी जीव विशेष म्ें (दोषावरणयोहार्नि: नि:शेषा आिस्त) दोष और आवरणें की हानि पूणर्तया पायी जाती है (आितशायनात्) क्येंकि अन्य जीवो म्ें दोष और आवरण की तरतमता देखी जाती है (यथा स्वहेतुभ्यो बहिरंत: मलक्षय:) जैसे अपने हेतु आदि से सुवणर् के कि́, कालिमा आदि अंतरंग एवं बहिरंग मल का नाश देखा जाता है।।४।। कारिकाथर्- किसी जीव म्ें दोष और आवरण की हानि परिपूणर् ™प से हो सकती है क्येंकि अन्यत्र उसका आितशयपना पाया जाता है। जिस प्रकार से अपने हेतुआW के द्वारा कनकपाषाणादि म्ें बा(् एवं अंतरंग मल का पूणर्तया अभाव पाया जाता है।।४।। सवर्ज्ञ की व्यवस्था सूक्ष्मांतरितदूराथार्:, प्रत्यक्षा: कस्यचिद्यथा। अनुमेयत्वतोÓग्न्यादिरिति सवर्ज्ञसंस्थिति:।।५।। सूक्ष्म वस्तु परमाणु आदि, अंतरित राम-रावण आदिक। दूरवतिर् हिमवन सुमे® ये, हQ प्रत्यक्ष किसी के नित।। क्येंकि ये अनुमेय कहे हQ, जैसे अग्न्यादिक अनुमेय। इस अनुमान प्रमाण कथित, सवर्ज्ञ व्यवस्था है स्वयमेव।।५।। अन्वयाथर्- (सूक्ष्मांतरित दूराथार्: कस्यचित् प्रत्यक्षा:) सूक्ष्म,

अंतरित और दूरवर्ती पदाथर् किसी के प्रत्यक्ष अवश्य हQ (अनुमेयत्वत:) क्येंकि ये अनुमान ज्ञान के विषय हQ (यथा अग्न्यादि:) जैसे आग्नि आदि पदाथर् अनुमान ज्ञान के विषय हQ अत: किसी के प्रत्यक्ष अवश्य हQ (इति सवर्ज्ञसंस्थिति:) इस प्रकार से सवर्ज्ञ की सम्यक् प्रकार से स्थिति सुघटित है।।५।। कारिकाथर्- सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदाथर् किसी न किसी के प्रत्यक्ष अवश्य हQ क्येंकि वे अनुमान ज्ञान के विषय हQ जैसे आग्नि आदि, इस प्रकार से सवर्ज्ञ सिद्धि होती है। सूक्ष्म-स्वभाव से परोक्ष परमाणु आदिक, अन्तरित-काल से परोक्ष राम, रावण आदिक, दूरवर्ती-देश से परोक्ष हिमवान पवर्त, सुमे® आदिक; ये किसी न किसी के प्रत्यक्ष अवश्य हQ क्येंकि अनुमेय हQ, जैसे आग्नि आदिक। इस अनुमान वाक्य से सवर्ज्ञ की सम्यक् प्रकार से सिद्धि होती है। आप ही निर्दोष सवर्ज्ञ हQ स त्वमेवासि निर्दोषो, युक्तिशाŒाÓविरोधिवाक्। आविरोधो यदिष्ट ते, प्रसिद्धेन न बाध्यते।।६।। वह रागादिक दोष रहित, सवार्थर्विज्ञ प्रभु तुम्हाR कहे। क्येंकि तुम्हारे वचन युक्ति, आगम से आविरोधी नित हQ।। प्रत्यक्षादि प्रमाणें से तव, तòव अबाधित हQ जग म्ें। अत: प्रभो! यह शासन तेरा, नित आविरोधी जन जन म्ें।। ६।।

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (५) (६) अन्वयाथर्- (स: निर्दोष: त्वमेव आfस) हे भगवन्! वह निर्दोष सवर्ज्ञ आप ही हQ (युक्तिशाŒाÓविरोधिवाक्) क्येंकि आपके वचन तवर्क और आगम से विरोध रहित हQ। (ते यत् इ॰ आfविरोध:) और जो यह आपका इ॰ मत है वह आfविरोधी है (प्रसिद्धेन न बाध्यते) क्येंकि वह प्रसिद्ध प्रत्यक्ष आदि प्रमाणें से बाधित नहाR होता है।। कारिकाथर्- हे भगवन्! दोष और आवरण से रहित निर्दोष सूक्ष्मादि पदार्थों को प्रत्यक्ष जानने वाले एवं युक्ति-शाŒा (तवर्क व आगम) से आfविरोधी वचन को बोलने वाले अर्हंत परमात्मा आप ही हQ क्येंकि आपका इ॰ (मत) विरोध रहित है उसम्ें प्रत्यक्ष, अनुमान आदि किसी भी प्रमाण से बाधा नहाR आती है।।६।। सवर्था एकांतवाद प्रमाण से बाधित है त्वन्मतामृतबा¢नां, सवर्थैकांतवादिनाम्। आप्ताभिमानदग्धानां, स्वे॰ Â◌ेन बाध्यते।।७।। प्रभु तव मत अमृत से बाहर, दुराग्राही-एकांतमती। 'मQ हूँ आप्त' सदा इस मद से, दग्ध हुए अज्ञानमती।। उनका वह एेकांतिक शासन, इ॰ उन्हW फिर भी बाधित। प्रत्यक्षादि प्रमाणें से वह, तòव सदा निन्दित दूषित।।७।। अन्वयाथर्- (सवर्थैकांतवादिनां) वस्तु के एक-एक धमर् को सवर्था™प से स्वीकार करने वाले एकांतवादी जन (त्वन्मतामृतबा¢नां) जो कि आपके मत™पी अमृत से बहिर्भूत हQ (आप्ताभिमानदग्धानां) और जो 'मQ आप्त हूँ' इस प्रकार के आfभमान से दग्ध हQ (स्वे॰ Â◌ेन बाध्यते) उनका जो अपना इ॰-मत है, वह प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है।।७।। कारिकाथर्- हे भगवन्! आपके मत ™प अमृत से जो बहिर्भूत हQ सवर्था एकांत™प मत को कहने वाले हQ और "मQ ही आप्त हूँ" इस प्रकार के आfभमान से जो दग्ध हQ उनका इ॰-मत प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित होता है।।७।। एकांत म्ें शुभ-अशुभ आदि नहाR बनते कुशलाÓकुशलं कमर्, परलोकश्चा न क्वचित्। एकांत-ग्राह-रक्तेâषु, नाथ! स्व-पर-वैरिषु।।८।। नाथ! स्वपर वैरी एकांत-ग्राह पीिंडत जन के मत म्ें। शुभ अ® अशुभ ि›âया परलोका-दिक फल भी नहिं बनते हQ।। पुण्य-पाप फल बंध-मोक्ष की, नहाR व्यवस्था भी बनती। क्येंकि सवर्था नित्य-क्षणिक म्ें, अथर् ि›âया ही नहिं घटती।।८।। अन्वयाथर्- (नाथ एकांतग्राहरक्तेâषु) हे नाथ! जो लोग एकांत को ग्राहण म्ें तत्पर हQ। (स्वपरवैरिषु) वे स्व और पर के शत्रु हQ। (क्वचित् कुशलाकुशलं कमर् च परलोक: न) उनके यहाँ पुण्य-पाप कमर् एवं परलोक भी नहाR सिद्ध होगा।। कारिकाथर्- हे नाथ! नित्य अथवा आfनत्य आदि एकान्त मान्यता का दुराग्राह करने वाले एेसे स्व एवं पर के बैरी-शत्रु मिथ्याÂf॰ जनें म्ें से किसी के यहाँ भी कुशल-पुण्य, अकुशल-पाप ि›âयाएँ तथा परलोकादि की व्यवस्था भी नहाR बन सकती है।।८।। भावैकांत की मान्यता म्ें दोष भावैकांते पदाथार्ना-मभावानामपन्हवात्। सवार्त्मकमनाद्यन्त-मस्व™पमतावकम्।।९।। सब पदाथर् एकांत™प से, आfस्त™प ही यदि जग म्ें। तो अभाव का लोप हुआ फिर, चार दोष है प्रमुख बने।। सब पदाथर् सब™प, अनादि, आfनधन

नि:स्व™प हेंगे। हे भगवन्! तव मत के द्वेषी, जन के यहाँ न कुछ हेंगे।।९।। अन्वयाथर्- हे भगवन्! (पदाथार्नां भावैकांते अभावानां अपÖवात्) यदि पदार्थों के आिस्तत्व का ही एकांत माना जाये, तब तो अभावें का लोप हो जाता है (अतावववंâ सवार्त्मवंâ अनाद्यनंतं अस्व™पं) पुन: आपसे भिV ा अन्य सभी के यहाँ सभी वस्तु सवार्त्मक, अनादि, अनंत और स्व™प शून्य हो जाव्ेंगी। कारिकाथर्- हे भगवन्! यदि आप से भिV ा अन्य मतावलम्बियें के यहाँ सभी पदाथर् सवर्था भावैकान्त-नित्य™प ही माने जाव्ेंगे, तब तो अभाव- प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, इतरेतराभाव और अत्यन्ताभाव™प अभावें का नाश हो जाने से सभी पदाथर् सवार्त्मक, अनादि, अनन्त और अस्व™प-स्व™प रहित-शून्य™प हो जाव्ेंगे। भावाथर्- प्रत्येक वस्तु म्ें जैसे भाव धमर् है, वैसे ही अभाव धमर् भी है वह अभाव मुख्यतया चार भेद ™प है। यथा-प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यंताभाव। यहाँ कारिका के उत्तराधर् म्ें उन्हाR चार अभावें के न मानने से होने वाले दोषें के नाम बताये गये हQ। आगे ग्रांथकार स्वयं इस बात को प्रकट करWग ।

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (७) (८) प्रागभाव-प्रध्वंसाभाव को न मानने म्ें दोष कायर्द्रव्यमनादि स्यात्, प्रागभावस्य निन्हवे। प्रध्वंसस्य च धमर्स्य, प्रच्यवेÓनतन्तां ›जेत्।।१०।। प्रागभाव को यदि नहिं मानें, सभी कायर् हो अनादि सिद्ध। मिóी म्ें घट सदा बना है, फिर क्या करता च›â निमित्त।। यदि प्रध्वंस धमर् नहिं मानें, किसी वस्तु का अन्त न हो। पिता, पितामह आदि कभी भी, अंत-मरण को प्राप्त न हें।।१०।। अन्वयाथर्- (प्रागभावस्य निÖवे कायर्द्रव्यमनादिस्यात्) यदि प्रागभाव को न माना जावे, तब तो सभी कायर् अनादि हो जाव्ेंगे (प्रध्वंसस्य च धमर्स्य प्रच्यवे अनंतता ›जेत्) और प्रध्वंस धमर् को नहाR मानने पर सभी वस्तुएं अनंतकाल तक बनी रहWगी।।१० ।। कारिकाथर्- हे भगवन्! यदि प्रागभाव का लोप करWगे, तब तो सम्पूणर् कायर् अनादि सिद्ध हो जाव्ेंगे और यदि प्रध्वंसाभाव का अभाव करWगे, तब तो सभी वस्तु की पयार्य्ें अनन्तपने को प्राप्त हो जाव्ेंगी।।१०।। भावाथर्- इस कारिका के अथर् म्ें श्री विद्यानंदस्वामी ने अ°सहœी म्ें अभाव के नहाR मानने वालें का विस्तृत खंडन किया है। चावार्क प्रागभाव को स्वीकार नहाR करता है, नैयायिक प्रागभाव को तुच्छाभाव ™प मानते हQ। चावार्क प्रध्वंसाभाव को भी नहाR मानता है अत: शब्द को नित्य एक अखण्ड सिद्ध करने का प्रयत्न करता है। नैयायिक शब्द को नित्यभूत आकाश का गुण मान रहे हQ। अन्योन्याभाव-अत्यंताभाव को न मानने म्ें दोष सवार्त्मवंâ तदेवंâ स्यादन्यापोह-व्यति›âमे। अन्यत्र समवाये न, व्यपदिश्येत सवर्था।।११।। यदि अन्योन्याभाव नहाR हो, एक वस्तु सब ™प बने। एक समय म्ें मनुज बने, सुर-पशु-नारक पयार्य घने।। यदि अत्यन्ताभाव न होवे, एक द्रव्य का अन्यें म्ें। हो जावे संमिश्राण फिर यह, जीव-अजीव न भेद बने।।११।। अन्वयाथर्- (अन्यापोहव्यति›âमे तदेवंâ सवार्त्मवंâ स्यात्) यदि अन्यापोह का लोप कर दिया जाये, तो वह अपना-अपना इ° एक तòव सब ™प बन जावेगा (अन्यत्र समवाये सवर्था न व्यपदिश्येत) और यदि अत्यंताभाव का लोप किया जावे, तब तो एक इ° तòव का अन्य के तòव म्ें संमिश्राण हो जाने पर सवर्था अपना इ° तòव कहा ही नहाR जा सकेगा।११।। कारिकाथर्- हे भगवन्! यदि अन्यापोह-इतरेतराभाव का लोप किया जावे, तो सभी वस्तु सवार्त्मक एक™प हो जाव्ेंगी। यदि अत्यन्ताभाव का ला ेप किया जावेगा, तब तो अन्यत्र समवाय स्वसमवायी आत्मा का भिVा समवायी प्रधान आदि म्ें समवाय हो जाने पर सभी का इ° तòव सवर्था कहा ही नहाR जा सकेगा। भावाथर्- इस कारिका के अथर् म्ें श्री विद्यानंद महोदय ने उत्पाद, व्यय, धzौव्य म्ें प्रत्येक के ८१-८१ भेद बांडे ही रोचक ढंग से किये हQ एवं सत्ता का लक्षण भी वशेष वणर्न से सहित है। विशेष जिज्ञासुआW को अ°सहœी म्ें ही देखना चाहिए। अभावैकान्त की मान्यता म्ें दोष अभावैकांत-पक्षेÓपि, भावापन्हव-वादिनाम्। बोधवाक्यं प्रमाणं न, केन साधनदूषणम्।।१२।। यदि सब वस्तु

अभाव™प हQ, शून्यवाद जन के मत म्ें। तब तो भाव-पदारथ विंâचित्, नहिं प्रतिभासित हें जग म्ें।। ज्ञान और आगम भी विंâचित्, नहिं प्रमाण हेंगे तब तो। वैâसे अपने मत का साधन, परमत दूषण किससे हो।।१२।। अन्वयाथर्- (अभावैकांत पक्षेÓपि भावापन्हववादिनां) यदि एकांत से सभी वस्तु को अभाव ™प ही स्वीकार किया जावे, तब तो भावें का सवर्था अभाव करने वाले इन वादियें के यहाँ (बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधनदूषणम्) ज्ञान और आगम दोनें का भी अभाव होने से दोनें प्रमाण नहाR रहWगे। पुन: किसके द्वारा अपने पक्ष का साधन और पर के पक्ष म्ें दूषण दिया जावेगा।।१२।। कारिकाथर्- हे भगवन्! पदाथर् का सवर्था अपलाप करने वाले अभावैकांतवादी माध्यमिकबौद्धें के यहाँ भी ज्ञान एवं वाक्य भी नहाR रहWगे और पुन: बोधवाक्यें की प्रमाणता न होने से वे लोग स्वपक्ष का साधन और परपक्ष का दूषण भी वैâसे कर सव्ें्âगे ?।।१२।। भावाथर्- जब किसी वस्तु का सद्भाव ही नहाR है, सभी वस्तुआW का अभाव ही अभाव है, तब तो स्वाथार्नुमान ™प ज्ञान एवं आगम आदि भी कहाँ रहWगे ? और जब किसी वस्तु का ज्ञान, वचनें से उनका प्रतिपादन ही नहाR रहेगा, तब अपने शून्यवाद का वणर्न भी वैâसे किया जावेगा और अास्तित्ववादियें के तôवें म्ें दूषण भी वैâसे दिया जावेगा ?

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (९) (१०) एकांत™प भावाभाव और अवक्तव्य म्ें दोष विरोधाV्ोभयैकात्म्यं स्याद्वाद-न्याय-विद्विषाम्। अवाच्यतैकान्तेÓप्युक्तिनार्वाच्यमिति युज्यते।।१३।। आfस्त-नास्ति से उभय™प ये, द्रव्य कदापि नहाR हेंगे। क्येंकि विरोध परस्पर इनका, स्याद्वाद विद्वेषी के।। यदि एकांत अवाच्य तòव है, कहो कथन वैâसे होगा? "तòव अवाच्य" यही कहना तो, वाच्य हुआ स्ववचन बाधा।।१३।। अन्वयाथर्- (स्याद्वाद न्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्) स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियें के यहाँ भाव और अभाव इन दोनें की एकता ™प मान्यता भी नहाR बनती है, क्येंकि इन भाव और अभाव का आपस म्ें विरोध देखा जाता है। (अवाच्यतैकांतेÓपि अवाच्यं इति उक्तिः न युज्यते) यदि एकांत से वस्तु को 'अवक्तव्य' ही माना जाये, तो 'तत्व अवाच्य है', यह कथन भी नहाR बन सकेगा। कारिकाथर्- हे भगवन्! स्याद्वाद न्याय के विद्वेषी अन्य मतावलम्बियें के यहाँ निरपेक्ष भावाभावात्मक ™प उभयैकांतपक्ष भी श्रोयस्कर नहाR है, क्येंकि उसम्ें भी विरोध आता है। यदि कोई एकांत से तòव को अवाच्य-अवक्तव्य ही कहW, तब तो "तòव अवाच्य है" यह कथन भी नहाR बन सकेगा।।१३।। भावाथर्- हम स्याद्वादियें के यहाँ तो भाव और अभाव इन दोनें की मान्यता का सप्तभंगी म्ें तृतीय भंग माना गया है एवं अवक्तव्य को चतुथर् भंग कहा गया है, क्येंकि हमारे यहाँ कथंचित् पद से सब सुघटित हो जाते हQ किन्तु एकांतवादियें के यहाँ सवर्था एकांत होने से ये दोनें बात्ें अघटित हQ। भाव-अभाव आदि निर्दोष वैâसे हQ ? कथंचित्ते सदेवे॰, कथंचिदसदेव तत्। तथोभयमवाच्यं च, नय-योगाV्ा सवर्था।।१४।। हे भगवन्! तव मत म्ें वस्तू, तòव कथंचित् सत् ही है। वही कथंचित् असत् ™प ही, उभय कथंचित् वो ही है।। वह अवाच्य भी है नयशैली, से ही सप्तभंगयुत है। वस्तु सवर्था आfस्त™प या, नास्ति आदि से अघटित है।।१४।। अन्वयाथर्- (ते कथंचित् सत् एव इ॰ तत् कथंचित् असदेव) हे भगवन्! आपके मत म्ें कथंचित् वस्तु 'सत्' ™प ही है एवं वही वस्तु कथंचित् 'असत्' ™प ही है। (तथा उभयं अवाच्यं न नय योगात् न सवर्था) तथा वही वस्तु कथंचित् उभय™प है और कथंचित् 'सत् अवक्तव्य' कथंचित् 'असत् अवक्तव्य' एवं कथंचित् 'सत् असत् अवक्तव्य' भी है, यह सभी व्यवस्था नयें की अपेक्षा से ही मानी गई है, किन्तु सवर्था ए्ेसा नहाR है।। कारिकाथर्- हे भगवन्! आपके मत म्ें कथंचित् वस्तु सत्™प ही है, इ॰ है एवं वही कथंचित् उभय™प है और वही कथंचित् अवाच्य™प भी है परन्तु यह सब व्यवस्था नयें की अपेक्षा से ही है सवर्था नहाR है। सत् असत् निर्दोष वैâसे हQ ? सदेव सवË को नेच्छेत्स्व™पादि-चतु॰यात्। असदेव विपयार्साV्ा चेV्ा व्यवति‰ते।।१५।। अपने द्रव्य सुक्षेत्र काल अ®, भाव चतु॰य से नित ही। सभी वस्तुएँ आfस्त™प ही, नास्ति™प ही हQ वे भी।। परद्रव्यादि चतु॰य से यह, कौन नहाR स्वीकार करे। यदि नहिं माने तव मत हे जिन! वस्तु व्यवस्था नहाR बने।।१५।। अन्वयाथर्- (स्व™पादि चतु॰यात्

सवË सत् एव विपयार्सात् असत् एव को न इच्छेत्) स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव ™प चतु॰य की अपेक्षा से सभी वस्तुएँ ‘सत्’ ™प ही हQ एवं परद्रव्य, परक्षेत्र परकाल की अपेक्षा से सभी वस्तुएँ ‘असत्’ ™प ही हQ इस प्रकार कौन स्वीकार नहाR करेगा ? (न चेत् न व्यवति‰ते) यदि कोई नहाR माने, तो किसी भी वस्तु की व्यवस्था ही नहाR बन सकती है। कारिकाथर्- स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव™प चतु॰य की अपेक्षा से सभी वस्तु सत्™प ही हQ, एेसा कौन स्वीकार नहाR करेगा ? एवं परद्रव्यादि चतु॰य की अपेक्षा से सभी वस्तु असत्™प ही हQ। यदि एेसा नहाR स्वीकार करW तो किसी के यहाँ भी अपने-अपने इ॰तòव की व्यवस्था नहाR हो सकेगी। उभय और अवक्तव्य कथन निर्दोष वैâसे हQ ? ›ाâमापिर्त-द्वयाद् द्वैतं, सहावाच्यमशक्तित:। अवक्तव्योत्तरा: शेषाŒायो भंगा: स्वहेतुत:।।१६।। ›âम से स्वपर चतु॰य से ही, वस्तु उभय धमार्त्मक हQ। युगपत् द्वय को नहिं कह सकते, अत: “अवाच्य” वस्तु वह है।।

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (११) (१२) बचे शेष त्रय भंगें म्ों यह, अवक्तव्य उत्तर पद हQ। सत् असत् उभय पदें के आगे, अवक्तव्य निज हेतुक है।।१६।। अन्वयाथर्- (›âमापिर्तद्वयात् द्वैतं, सह अशक्तित: अवाच्यं) आस्ति, नास्ति दोनें धर्मों का ›âम से कथन करने से 'आस्तिनास्ति' ™प तृतीय भेद बनता है एवं परचतु०य के द्वारा कहे गये आस्ति, नास्ति दोनें धर्मों को एक साथ कह नहाR सकते हQ अत: 'अवक्तव्य' नाम का चौथा भंग होता है। (अवक्तव्योत्तरा: शेषा: त्रयो भंगा स्वहेतुत:) उपर्युक्त आदि के तीन भंगें के उत्तर म्ों अवक्तव्य पद जोंड देने से बचे हुए तीन भंग अपने-अपने हेतु से कथंचित् ™प से बन जाते हQ। कारिकाथर्- ›âम से दोनें धर्मों की विवक्षा करने से "स्यादस्तिनास्ति" द्वैत™प तीसरा भंग बन जाता है एवं एक साथ दोनें ही धर्मों को कहने की शक्ति किसी भी शब्द म्ों नहाR है, अतएव सहावाच्य होने से चौथा 'अवक्तव्य™प' भंग हो जाता है, इसी प्रकार से प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय भंग के उत्तर म्ों 'अवक्तव्य' पद के जोंड देने से शेष तीन भंग भी अपने-अपने हेतु से सिद्ध हो जाते हQ।। भावाथर्- प्रारंभ के आस्ति, नास्ति और आस्तिनास्ति इन तीनें के साथ अवक्तव्य पद जोंड देने से आगे पाँचव्ों, छठे और सातव्ों भंग बन जाते हQ यथा- सत् अवक्तव्य स्वचतु०य की अपेक्षा एवं युगपत् दोनें धर्मों के न कह सकने से 'सत् अवक्तव्य' भंग होता है। परचतु०य की अपेक्षा एवं युगपत् दोनें धर्मों को न कह सकने से 'असत् अवक्तव्य' भंग होता है तथा ›âम से स्वपरचतु०य की अपेक्षा और युगपत् दोनें को न कह सकने से 'सत् असत् अवक्तव्य' भंग होता है। उपर्युक्त १४, १५, १६वाR कारिकाआW के अथर् म्ों अ०सहœाी ग्रंथ म्ों आचायर्देव ने सप्तभंगी का बांडा सुंदर विवेचन किया है। कोई विशेष चतुर अवक्तव्य नाम से एक आठव्ों भंग को मानने लगे थे, तब आचायर्श्री ने क®णा बुद्धि से उन्हW समझाकर सात ही भंग मानने का विधान किया है। प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी को भी बहुत ही स्प० किया है। भावधमर् अभाव के साथ रहता है आस्तित्वं प्रतिषेध्येनाÓविनाभाव्येक-धमिर्णि। विशेषणत्वात्साधम्यË, यथा भेद-विवक्षया।।१७।। एक वस्तु म्ों आस्ति धमर्, अपने प्रतिषेधी नास्ति के। बिना नहिं रह सकता आविनाभावी कहलाता इससे।। क्येंकि विशेषण है जैसे, अन्वय हेतू व्यतिरेक बिना। नहाR रहे आविनाभावी है, एेसा यह Â०ांत बना।।१७।। अन्वयाथर्- (एक धमिर्णि आस्तित्वं प्रतिषेध्येनाÓबिनाभावी) एक धर्मी™प वस्तु म्ों आस्तित्व धमर् अपने विरोधी नास्तित्व के साथ ही रहता है (विशेषणत्वात् यथा भेद-विवक्षया साधम्यË) क्येंकि वह विशेषण है जैसे अन्वय हेतु व्यतिरेक हेतु के साथ आविनाभाव संबंध को लिए हुए रहता है। कारिकाथर्- एक जीवादि धर्मी म्ों आस्तित्व जो वस्तु का धमर् है, वह प्रतिषेध्य नास्तित्व के साथ आविनाभावी है, क्येंकि विशेषण है, जैसे कि हेतु म्ों भेद विवक्षा से साधम्यर्, वैधम्यर् के साथ आविनाभावी है।। भावाथर्- जो जिसके बिना नहाR रहता है, उसका उसके साथ आविनाभाव

कहा जाता है। प्रत्येक वस्तु म्ें आस्ति धमर् नास्ति के साथ आविनाभावी है। जैसे पुस्तक स्व™प से है पर™प चौकी आदि से नहाR है। अभाव भाव के साथ रहता है नास्तित्वं प्रतिषेध्येनाÓविनाभाव्येक धमिर्णि। विशेषणत्वाद्वैधम्यË यथाÓभेद-विवक्षया।।१८।। एक वस्तु म्ें नास्ति धमर् भी, स्वविरोधी आस्ति के साथ। आविनाभावी ही रहता है, क्येंकि विशेषण भी वह खास।। जैसे हेतू के प्रयोग म्ें, है व्यतिरेक हेतु नित ही। अन्वय हेतू के सह रहता, आविनाभावी सुघटित ही।।१८।। अन्वयाथर्- (एक धमिर्णि नास्तित्वं प्रतिषेध्येनाÓविनाभावि) एक वस्तु म्ें नास्तित्व धमर् अपने विरोधी आस्तित्व के साथ आविनाभावी है (विशेषणत्वात् यथा अभेद विवक्षया वैधम्यË) क्येंकि वह विशेषण है जैसे व्यतिरेक हेतु अन्वय के साथ आविनाभावी है।।१८।। कारिकाथर्- एक धर्मी म्ें नास्तित्व भी अपने प्रतिषेध्य-आस्तित्व के साथ आविनाभावी है, क्येंकि वह विशेषण है, जैसे कि अभेद विवक्षा (अन्वय की अपेक्षा) से किसी अनुमान म्ें वैधम्यर् साधम्यर् के साथ आविनाभावी हQ।। वस्तु भावाभावात्मक है विधेयप्रतिषेध्यात्मा, विशेष्य: शब्दगोचर:। साध्यधर्मो यथा हेतुरहेतुश्चाप्यपेक्षया।।१९।।

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (१३) (१४) वस्तु सदा विधिप्रतिषेधात्मक, है विशेष्य धर्मी विख्यात। क्येंकि शब्द के गोचर है वह, सत् असत् ™प जग ख्यात।। यथा-साध्य-अग्नी का साधन, धूम आग्नि का हेतू है। वही अपेक्षा से हेतू भी, जल के लिए अहेतू है।।१९।। अन्वयाथर्- (विशेष्य: विधेयप्रतिषेध्यात्मा शब्दगोचर:) जो विशेषण के द्वारा जानने योग्य है वह विशेष्य है, वह विधि और प्रतिषेध करने योग्य ही होता है क्येंकि वह शब्द का विषय है (यथा साध्यधमर्: हेतु अपेक्षया च अहेतु आपि) जैसे साध्य साध्य का जो धमर् एक विवेक्षा से अहेतु ™प भी हो जाता है।।१९।। कारिकाथर्- शब्द के विषयभूत विशेष्य-जीवादि समस्त पदाथर् विधि एवं प्रतिषेध इन दोनें धमर्स्व™प हQ, जैसे कि साध्य का धमर् अपेक्षा से हेतु एवं अहेतु भी होता है।। शेष भंग भी नय विवक्षा से बन्ेंगे शेषभंगाश्चा नेतव्या यथोक्त नय-योगत:। न च कश्चिाद्विरोधोÓस्ति मुनीन्द्र! तव शासने।।२०।। आस्ति, नास्ति उभयात्मक ›âम से, तीन भंग ये कहे गये। यथायोग्य नय विधि से आगे, भंग चार हQ शेष कहे।। अवाच्य, आस्ति-अवाच्य, नास्ति-अवाच्य, आस्तिनास्ति- अवाच्य। हे मुनीन्द्र! तव शासन म्ें, कुछ भी विरोध नहिं दिखे कदापि।। २०।। अन्वयाथर्- (शेष भंगा: च यथोक्तनययोगत: नेतव्या:) आगे के जो शेष भंग हQ उनको भी यथायोग्य नयें की अपेक्षा से समझ लेना चाहिए (मुनीन्द्र! तव शासने कश्चित् विरोधो न चास्ति) हे मुनीन्द्र! आपके शासन म्ें कुछ भी विरोध नहाR आता है।।२०।। कारिकाथर्- यथोक्त नयें की अपेक्षा से शेष भंग भी लगा लेना चाहिए। अतएव हे मुनीन्द्र! आपके शासन म्ें कुछ भी विरोध नहाR है।। विशेषाथर्- यहाँ शेष शब्द से तीन भंग के बाद आगे के चार शेष कहे गये हQ। श्रीमद् भ‌ाकलंक देव ने तो अ°शती म्ें दो के बाद तृतीय से आगे तक को भी शेष शब्द से सूचित किया है एवं 'अथवा' कहकर तीन के बाद से चार को भी शेष कहा है। आप्तमीमांसा की वृत्ति को करने वाले श्री वसुनंदी सैद्धांतिकाचायर् ने इस कारिका के विरोध शब्द को उपलक्षण मात्र कहा है और इससे आठ दोषें को ग्राहण किया है। उनके नाम-विरोध, वैयधिकरण्य, अनवस्था, संकर, व्यतिकर, संशय, अप्रतिपत्ति और अभाव। यहाँ कहना यह है कि हे भगवन्! आपके मत म्ें विरोध, वैयधिकरण्य आदि ८ दोष या इनके भेद-प्रभेद से और भी अनेकें दोष नहाR आते हQ। कोई इन दोषें को स्याद्वाद म्ें घटित करता है। यथा- विरोध- भाव अभाव एक-दूसरे के विरोधी होने से एक वस्तु म्ें एक साथ नहाR रह सकते हQ अत: जैनें के यहाँ विरोध दोष आता है। वैयधिकरण्य- दो धर्मों का आधार भिVा होना वैयधिकरण है। जैसे आस्ति का आधिकरण भिVा है और नास्ति का आधिकरण भिVा है। दोनें का आधिकरण भिVा होने पर भी एकाधिकरण मानना वैयधिकरण्य दोष कहलाता है। अनवस्था- जिस प्रकार प्रत्येक पदाथर् म्ें आस्तित्व नास्तित्व धमर् हQ उसी प्रकार आस्तित्व-नास्तित्व धमर् म्ें भी अन्य और धमर् स्वपर की अपेक्षा आस्तित्व- नास्तित्व™प कल्पित करते

चलिये। आगे-आगे भी एेसी ही कल्पना होने से अप्रमाणीक अनंत आस्तित्व-नास्तित्व कल्पना का विराम न होने से अनवस्था दोष आ जाता है। संकर- स्याद्वाद म्ों आस्तित्व-नास्तित्व एक जगह रहते हQ अत: आस्तित्व के आधार म्ों आस्तित्व-नास्तित्व और नास्तित्व के आधार म्ों आस्तित्व-नास्तित्व के रहने से संकर दोष आता है। व्यतिकर- आस्तित्व-नास्तित्व के एक साथ रहने से आस्तित्व ™प से नास्तित्व भी एवं नास्तित्व ™प से आस्तित्व भी मानना पाडेगा। अत: स्याद्वाद म्ों व्यतिकर दोष भी आता है। संशय- जब वस्तु को भाव-अभाव धर्मों से उभयात्मक माना है तब यह निश्चाय नहाR हो सकता है कि यह वस्तु आस्ति™प है या नास्ति™प एेसा संशय बना रहने से संशय दोष आता है। अप्रतिपत्ति- संशय होने से वस्तु का ठीक-ठीक ज्ञान नहाR हो सकता है अत: स्याद्वाद मत म्ों अप्रतिपत्ति-अज्ञान नामक दोष आता है। अभाव- यथाथर् ज्ञान के अभाव म्ों वस्तु की व्यवस्था न होने से वस्तु का अभाव ही सिद्ध होता है अत: अभाव दोष आता है। इस प्रकार से अन्य जनें ने अर्हंत के शासन म्ों ये विरोध आदि दोष दिखाये हQ किन्तु जैनाचायर् कहते हQ कि स्याद्वाद म्ों एक भी दोष नहाR आता है।

 (१६) एक ही वस्तु म्ें आfवरोध ™प विरोधी दो धर्मों का रहना बन जाता है। विरोध के तीन भेद हQ-बध्यघातक, सहानवस्था और प्रतिबध्यप्रतिबंधक। सपर् म्ें नकुल का बध्यघातक भाव है क्येंकि सपर् को नेवला मार डालता है। दोनें एक साथ नहाR रहते। शीत उष्ण का सहानवस्था विरोध है क्येंकि ये दोनें एक साथ नहाR रहते हQ। ये तीनें हमारे यहाँ असंभव हQ क्येंकि एक ही वस्तु म्ें आfस्तिधमर् और उसी समय उसम्ें नास्तिधमर् रह जाता है। जैसे एक ही राम म्ें पिता, पुत्र ये दोनें विरोधी धमर् विद्यमान हQ। रामचन्द्र जी लवण और अंकुश के पिता हQ और दशरथ के पुत्र हQ। ये आfस्त-नास्ति धमर् परस्पर म्ें विरोधी नहाR हQ एवं उनकी आधारभूत वस्तु भिV्ा-भिV्ा न होकर एक है। अतएव दोनें धर्मों का जीव म्ें एकाधिकरण होने से वैयधिकरण दोष नहाR आता है। हमारे यहाँ एक धर्मी वस्तु म्ें अनंतें धमर् रहते हQ किन्तु एक धमर् म्ें अन्य कोई धमर् नहाR रहता है। अत: अनवस्था भी नहाR है। आfस्त-नास्ति दोनें धमर् अपने-अपने स्वभाव से सहित हQ आfस्त कभी भी नास्ति ™प और नास्ति कभी आfस्त™प से मिश्रित नहाR होता है। अत: संकर दोष भी नहाR आता है। आfस्तत्व™प से नास्तित्व या नास्तित्व ™प से आfस्तत्व नहाR बन सकते अत: व्यतिकर दोष नहाR आता है। वि®द्ध अनेक धर्मों के अवलंबन करने वाले ज्ञान को संशय कहते हQ किन्तु यहाँ वस्तु स्व की अपेक्षाकृत आfस्त है और पर की अपेक्षा से नास्ति ही है अत: संशय का प्रश्न ही नहाR है। संशय के न होने से वस्तु का यथाथर् ज्ञान हो जाता है अत: अप्रतिपत्ति दोष नहाR आता है। वस्तु की व्यवस्था सुघटित सिद्ध होने से अभाव नाम का दोष भी नहाR है। अत: यह निष्कषर् निकला कि भगवान् जिनेन्द्र के शासन म्ें विरोध आदि कोई भी दोष नहाR आते हQ। वस्तु एक ™प नहाR है एवं विधि निषेधाभ्या-मनवस्थितमथर्कृत्। नेति चेV्ा यथा कायË, बहिरन्त®पाधिभि:।।२१।। ए्ेसे विधि निषेध द्वारा जो, एक™प से नहाR कही। वह अनवस्थित वस्तु जगत म्ें, अथर् ›âयाकारी नित ही।। यदि ए्ेसा नहिं मानें तो, बा¢भ्यंतर द्रव्य कारण से। कायर् कहा है, वह नहिं होगा, अथर्ि›âया नहिं होने से।।२१।। अन्वयाथर्- (एवं विधिनिषेधाभ्यां अनवस्थितं अथर्कृत) इस प्रकार से विधि और निषेध के द्वारा जो वस्तु अवस्थित ™प से एक ™प नहाR है वही वस्तु अथर्ि›âयाकारी है (न इति चेत् न यथा बहिरंत: उपाधिभि: कायË) यदि ए्ेसा नहाR माना जाये, तो जैसे बा¢ और अंतरंग इन दोनें कारणें से कायर् माना गया है, वह उस प्रकार से नहाR बन सकेगा। कारिकाथर्- इस प्रकार से विधि और निषेध के द्वारा अनवस्थित जीवादिवस्तु अथर्ि›âयाकारी हQ। यदि ए्ेसा नहाR मानें, तो जिस प्रकार से बहिरंग-अंतरंग उपा धि- सहकारी और उपादान कारणें से अनवस्थितरहित कायर् अथर्ि›âयाकारी नहाR है तथैव सभी जीवादिवस्तु विधि-निषेध से रहित अथर्ि›âयाकृत् नहाR हो सवेंâगी।। भावाथर्- वस्तु म्ें

आस्ति या नास्ति दो म्ें से कोई एक ही धमर् रहे तो वस्तु अवस्थित हो जावेगी, किन्तु दोनें धर्मों के रहने से वह वस्तु अनवस्थित कहला ती है। घटकायर् अंतरंग कारण मिóी और बहिरंग कारण च›ã, वुंâभकार आदि से होता है। इसलिए अनवस्थित है। यदि अंतरंग या बहिरंग म्ें से किसी भी एक कारण से ही उत्पत्ति मान लो, तो घट के कारण अवस्थित हो जाने से घट बन ही नहाR सकेग्। प्रत्येक धमर् का अथर् पृथक् है धर्मे धर्मेÓन्य एवार्थो धमिर्णोÓनन्तधमर्ण:। आf"त्वेÓन्यतमान्तस्य, शेषान्तानां तद"ता।।२२।। अनंतधमार् वस्तू के, प्रत्येक धमर् के पृथक्-पृथक्। अथर् कहे हQ अत: वस्तु है, अनंत धमार्त्मक शाÕत।। अनंत धर्मों म्ें जब इक ही, धमर् प्रधान कहा जाता। तब वे शेष धमर् हो जाते, गौण यही जिन ने भाषा।।२२।। अन्वयाथर्- (अनंतधमर्ण: धमिर्णो धर्मे धर्मे अन्य एव अथर्:) अनंत धमर् वाली वस्तु के एक-एक धमर् म्ें भिVा ही अथर् पाया जाता है (अन्यतमान्तस्य अंगित्वे शेषान्तानां तद"ता) उन बहुत धर्मों म्ें से किसी एक धमर् को प्रधान करने पर शेष धर्मों की गौणता हो जाती है। कारिकाथर्- अनंतधर्मों से विशि° जीवादि एक धर्मी के प्रत्येक धमर् म्ें भिVा-भिVा प्रयोजन आदि™प अथर् विद्यमान हQ एवं धर्मों के द्वारा ही धर्मी का कथन होता है अ तएव

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (१७) (१८) उन धर्मों म्ें से किसी एक धमर् को प्रधान करने पर शेष सभी धमर् गौण हो जात् हQ।। भावाथर्- जब जीव का आस्ति धमर् प्रधान किया जाता है, तब नास्ति धमर् गौण हो जाता है और जब नास्ति धमर् प्रधान किया जाता है, तब आस्ति धमर् गौण हो जाता है। अन्य धर्मों म्ें भी सप्तभंगी प्रि›âया करना एकाÓनेक-विकल्पादा-वुत्तरत्रापि योजयेत्। प्रि›âयां भंगिनीमेनां नयैनर्य-विशारद:।।२३।। नय म्ें निपुण जनें को नित ही, एक अनेक विकल्पें म्ें। नित्य क्षणिक आदिक म्ें भी ये, सप्तभंग कर लेने हQ।। सुनय विवक्षा के द्वारा, प्रत्येक धमर् म्ें सुघटित है। सप्तभंग प्रि›âया विधी यह, जिनमत म्ें ही वणिर्त है।।२३।। अन्वयाथर्- (नय विशारद: उत्तरत्र एकाÓनेक-विकल्पादौ आपि) जो नयें म्ें कुशल हQ वे आगे-आगे एक-अनेक आदि भेदें म्ें भी (नयै: एनां भंगिनाR प्रि›âयां योजयेत्) नयें के द्वारा इस सप्तभंगी प्रि›âया को घटित कर लेव्ें। कारिकाथर्- नयें की योजना करने म्ें कुशल स्याद्वादी को आगे इसी प्रकार से एक और अनेक आदि धर्मों म्ें भी इस सप्तभंगी प्रि›âया को द्रव्याथिर्क एवं पयार्याथिर्क नयें के अनुसार योजित कर लेना चाहिए।। ।।इति प्रथम: परिच्छेद:।। प्रथम परिच्छेद का सार (कारिका १ से २३ तक) श्रोतव्या॰सहœी श्रुतै: किमन्यै: सहœासंख्यानै:। विज्ञायेत ययैव स्वसमयपरसमयसद्भाव:।। श्री विद्यानंद स्वामी का यह कहना है कि एक अ॰सहœी को ही सुनना चाहिए। अन्य हजारें ग्रान्थें को सुनने से क्या प्रयोजन है ? क्येंकि इस एक अ॰सहœी ग्रां थ के द्वारा ही स्वसमय और परसमय का स्व™प जान लिया जाता है। महान् आचायर् श्री उमास्वामी जी ने महान् ग्रांथराज तÒवाथर्सूत्र ग्रांथ की रचना के प्रारंभ म्ें 'मोक्षमागर्स्य नेतारं भेत्तारं कमर्भूभृतां। ज्ञातारं विÕातत्वानां वंदे तद्गुणलब्धये' इस मंगल श्लोक को रचा है। श्री समंतभद्रस्वामी ने इस मंगलाचरण श्लोक का आधार लेकर 'आप्तमीमांसा' नाम से एक स्तोत्र रचा, जिसका अपरनाम 'देवागमस्तोत्र' भी है। श्री भóाकलंक देव ने आप्तमीमांसा स्तुति पर 'अ॰शती' नाम से भाष्य बनाया है जो कि जैनदर्शन का एक अतीव गूांढ ग्रांथ बन गया है। इसी आप्तमीमांसा ग्रांथ पर आचायर्वयर् श्री विद्यानंद महोदय ने 'अ॰सहœी' नाम से अलंकार टीका बनाई है। इसम्ें अ॰शती ग्रांथ को अंतगर्भित किया है, जो कि जैनदर्शन का सर्वोत्कृ॰ ग्रांथ कहलाता है। इसम्ें दश परिच्छेद म्ें १. भाव-अभाव, २. द्वैत-अद्वैत, ३. नित्य-आनित्य, ४. भेद-अभेद, ५. अपेक्षा- अनपेक्षा, ६. हेतु-आगम, ७. अंतरंगाथर्-बहिरंगाथर्, ८. दैव-पु®षाथर्, ९. पुण्य- पाप, १०. अज्ञान-ज्ञानवाद, इन एक-एक प्रकरणें के एकांतें का पूवर्पक्षपूवर्क निरसन करके सवर्त्र स्याद्वाद प्रि›âया से वस्तु तÒव को समझाया गया है। वास्तव म्ें तÒव अतÒव को तÒव म्ें समझने के लिए यह न्याय ग्रांथ एक कसौटी का पत्थर है और आधिक तो क्या कहा जाये स्वामी श्री समंतभद्राचायर्वयर् ने आप्त और अनाप्त की मीमांसा करते हुए आप्त-अर्हंतदेव को ही न्याय की कसौटी

पर कसकर सत्य आप्त सिद्ध किया है, देखिए- देवागम-नभोयान - चामरादि - विभूतय:। मायाविष्वपि Âष्यंते नातस्त्वमसि नो महान्।।१।। आतिशय गुणें से युक्त भगवान् की स्तुति करने के इच्छुक श्री समंतभद्र- स्वामी स्वयं अपनी श्राद्धा और गुणज्ञता लक्षण प्रयोजन से ही इस देवागम स्तव म्ें आप्त की मीमांसा करते हुए भगवान से प्रश्नोत्तर करते हुए के समान ही कहते N : श्

हQ अथार्त् मानो भगवान् यहां प्रश्न कर रहे हQ कि हे समंतभद्र! मुझ म्ें देवें का आगमन, चमर, छत्रादि अनेकें विभूतियाँ हQ फिर भी तुम मुझे नमस्कार क्यें नहाR करते हो ? तब उत्तर म्ें स्वामी जी कहते हQ कि “हे भगवन्! आपके जन्मकल्याणक आदिकें म्ें देव, च›âवर्ती आदि का आगमन, आकाश म्ें गमन, छत्र, चामर, पुष्पवृि° आदि विभूतियाँ देखी जाती हQ किन्तु ये विभूतियाँ तो मायावी जनो म्ें भी हो सकती हQ अतएव आप हमारे लिए महान्-पूज्य नहाR हQ। इस पर भगवान् मानो पुन: प्रश्न करते हQ कि हे समंतभद्र! बा८ विभूतियें से तुमने हम्ें नमस्कार नहाR किया, तो न सही किन्तु मस्करी आदि म्ें असंभवी एेसे अंतरंग म्ें पसीना आदि का न होना एवं बहिरंग म्ें जो गंधोदकवृि° आदि महोदय हQ, जो कि दिव्य और सत्य हQ वे मुझम्ें हQ अत: आप मेरी स्तुति करिये। इस पर श्री समंतभद्र स्वामी कहते हQ कि अंतरंग और बहिरंग शरीरादि के महोदय भी रागादिमान देवें म्ें पाये जाते हQ अत: इनसे भी आप महान नहाR हQ अथार्त् देवें के शरीर म्ें भी पसीना, मलमूत्रादि नहाR है उनके यहाँ भी गंधोदकवृि° आदि वैभव होते हQ अत: इन महोदय से भी आप हमारे पूज्य नहाR हQ। मानो पुन: भगवान् कहते हQ कि हे समंतभद्र! रागादिमान देवें म्ें भी असंभवी एेसे तीथर्कृत संप्रदाय को चलाने वाला ‘मQ तीथËकर हूँू’ अत: मQ अवश्य ही तुम्हारे द्वारा स्तुति करने के योग्य हूँ। इस पर श्री समंतभद्रस्वामी प्रत्युत्तर देते हुए के समान कहते हQ कि हे भगवन्! आगमTMप तीथर् को करने वाले सभी तीथËकरें के आगमें म्ें परस्पर म्ें विरोध पाया जाता है अत: सभी तो आप्त हो नहाR सकते अथार्त् बुद्ध, कपिल, ईÕार आदि सभी ने अपने-अपने आगमें को रचकर अपना-अपना तीथर् चलाकर अपने को तीथËकर माना है किन्तु सभी के आगम म्ें परस्पर म्ें विरोध होने से सभी सच्चे आप्त नहाR हो सकते हQ इसलिए इन सभी म्ें कोई एक ही परमात्मा-सच्चा आप्त हो सकता है, एेसा अथर् ध्वनित कर देते हQ। इस कारिका की अ°सहœाी टीका म्ें श्री विद्यानंद महोदय ने बहुत ही विस्तार से सभी सम्प्रदायें का परस्पर म्ें विरोध दशार्या है। अन्य सम्प्रदायें म्ें वेदें को प्रमाण मानने वाले वैदिक संप्रदायी हQ। उनम्ें मीमांसक, वैशेषिक, नैयायिक एवं सांख्य वैदिक कहलाते हQ और चावार्क, बौद्ध आदि वेद को नहाR मानने वाले अवैदिक कहलाते हQ। आजकल कुछ लोग वेद के मानने वालें को आस्तिक एवं नहाR मानने वालें को नास्तिक कहते हQ और उसम्ें जैन को भी नास्तिक म्ें लिया है, क्येंकि जैन भी वेदें को प्रामाणिक नहाR मानते हQ किन्तु वास्तव म्ें एेसी बात नहाR है, जो आत्मा, मोक्ष, परलोक आदि के आिस्तत्व को मानते हQ वे आस्तिक एवं आत्मा आदि के आिस्तत्व को न मानने वाले नास्तिक कहलाते हQ अत: चावार्क और शून्यवादी नास्तिक हQ बाकी सभी आस्तिक की कोटि म्ें आ जाते हQ। अस्तु! सभी के सम्प्रदायें के परस्पर विरोध का यहाँ विंâचित्

दिग्दर्शन कराते हQ। चावार्क- पृथ्वी, जल, आग्नि और वायु इन चार जांड तत्वें को ही मानता है। उसका कहना है कि इन्हाR भूतचतु०यें के मिलने से संसार बना है और इन्हाR भूतचतु०यें से आत्मा की उत्पत्ति होती है। ये चावार्क परलोकगमन, पुण्य-पाप का फल आदि नहाR मानते हQ। वेदांती एक बÇÿ ा™प ही तòव स्वीकार करते हQ, उनका कहना है कि एक परमबÇÿ ा ही तòव है। संपूणर् विÕ ा म् ें जो चेतन-अचेतन पदाथर् दिख रहे हQ हम और आप सभी उस एक परमबÇÿ ा की ही पयार्य् ें हQ। यह चर-अचर जगत मात्र आविद्या का ही विलास है इत्यादि। बांडे आश्चायर् की बात है कि एक जांड से चैतन्य की उत्पत्ति मान रहा है, तो दूसरा चैतन्य बÇÿ ा से अचेतनें की उत्पत्ति मान रहा है, दोनें म् ें सवर्था परस्पर विरोध है। ए ेसे ही बौद्ध सभी वस्तुआW को क्षणिक मानते हQ उनका कहना है कि एक क्षण के बाद सभी वस्तुएँ जांड-मूल से न० हो जाती हQ, जो उनका ठहरना द्वितीय आदि क्षणें म् ें दिख रहा है, वह सब कल्पनामात्र है। वासना से ही ए ेसा अनुभव आता है। इधर सांख्य कहता है कि सभी वस्तुएँ सवर्था नित्य ही हQ कोई वस्तु न० नहाR होती है किन्तु तिरोभूत हो जाती है एवं उत्पत्ति भी नहाR है। वस्तु का आविभार्व ही होता है। मिó ी से घट बनता नहाR है बल्कि मिó ी म् ें घट सदा विद्यमान है। कुम्हार के प्रयोग से प्रगट हो गया है इत्यादि। इन दोनें म् ें भी सवर्था ३६ का आंकांडा है। वैशेषिक- एक सदाशिव महेÕ ार को मानकर उसे सृि० का कतार् मानते हQ तो मीमांसक सवर्ज्ञ के आस्तित्व को न मानकर वेद वाक्यें से ही सम्पूणर् सूक्ष्मादि अतीन्द्रिय पदार्थों का जानना मानते हQ। वेद को प्रमाण मानने वालें म् ें भी उन वेद वाक्यें को पृथक्-पृथक् अथर् करके कई लोग आपस म् ें विसंवाद करते हQ। भाó वेद वाक्यें का अथर् भावना करते हQ। प्रभाकर उन्हाR वाक्यें का अथर् नियोग करते हQ और वेदांती उन्हाR वाक्यें से बÇÿ ावाद को पु० करते हQ। अतएव श्री समंतभद्रस्वामी कहते हQ कि सभी के सम्प्रदायें म् ें परस्पर म् ें विरोध होने से सभी आप्त नहाR हो सकते हQ किन्तु कोई एक ही आप्त-सच्चा (१९) (२०)

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) देव हो सकता है। पुन: मानें भगवान् यह प्रश्न करते हQ कि सच्चे आप्त म्ें आप क्या गुण चाहते हQ ? तो समंतभद्रस्वामी कहते हQ कि वह सवर्ज्ञ होना चाहिए। सूक्ष्म-परमाणु आदि, अंतरित-राम रावण आदि और दूरवर्ती-हिमवन, सुमे® आदि पदाथर् अनुमान ज्ञान से जाने जाते हQ जैसे कहाR पर धुएं को देखकर आग्नि का अनुमान लगाया जाता है, तो वह आग्नि किसी न किसी के प्रत्यक्ष अवश्य है और जिनके ये सूक्ष्मादि पदाथर् प्रत्यक्ष होते हQ, वे ही सवर्ज्ञ हQ। पुन: प्रश्न होता है कि हम संसारी प्राणी अल्पज्ञ हQ तो सवर्ज्ञ वैâसे बन सकते हQ, इस पर आचायर् कहते हQ कि दोष और आवरणें का अभाव किसी जीव म्ें सम्पूणर् ™प से हो सकता है क्येंकि हम लोगें म्ें दोष-रागादि भाव और आवरण-कर्मों की तरतमता देखी जाती है। किन्हाR म्ें रागादि दोष कम हQ किन्हाR म्ें उससे भी कम हQ। इससे यह अनुमान लगता है कि किसी जीव म्ें ये दोषादि सवर्था भी न° हो सकते हQ जैसे कि अपने निमित्तें से स्वणर् पाषाण से कि6 और कालिमा का सवर्था अभाव हो जाता है और सुवणर् शुद्ध हो जाता है। प्रश्न- दोष और आवरण म्ें क्या अन्तर है ? उत्तर- कमर् के उदय से होने वाले जीव के राग-द्वेष, अज्ञात आदि परिणाम दोष कहलाते हQ। इन्हW भावकमर् भी कहते हQ। ज्ञानावरण आदि पौद्गलिक कमर् आवरण कहलाते हQ इन्हW द्रव्य कमर् कहते हQ। इन दोनें म्ें परस्पर म्ें कायर्-कारण भाव निश्चित है जैसे बीज से अंकुर एवं अंकुर से बीज की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। उसी प्रकार से दोष से आवरण और आवरण से दोष होते रहते हQ। बौद्ध- अज्ञानादि दोष स्वपरिणाम के निमित्त से ही होते हQ इसम्ें आवरण (कमर् का उदय) कुछ भी नहाR कर सकता है। जैनाचायर्- एेसा नहाR है। यदि दोषें को स्वनिमित्तक ही मानोगे, तो इनका कभी अभाव नहाR हो सकेगा पुन: इसके नाश के बिना मोक्ष होना भी असंभव हो जावेगा। जैसे-जीव के जीवत्व आदि भाव स्वनिमित्तक होने से कभी न° नहाR होते हQ, इसलिए दोषें को आवरण निमित्तक मानना ही चाहिए। सांख्य- अज्ञान आदि दोष परनिमित्तक ही हQ क्येंकि ये स्वयं प्रधान-प्रकृति-जाेड के परिणाम हQ, आत्मा के नहाR। जैनाचायर्- ये दोष सवर्था परपुद्गल के निमित्त से ही हें, एेसी बात नहाR है अन्यथा मुक्त जीवें म्ें भी इनका प्रसंग आ जावेगा, क्येंकि पुद्गल वगर्णाएं तो वहाँ भी मौजूद हQ किन्तु एेसा नहाR देखा जाता है। उन सिद्धें म्ें अज्ञान आदि दोष के न होने से केवल पुद्गल के निमित्त से वहाँ पर कमर्बंध नहाR होता है। निष्कषर् यह निकलता है कि राग-द्वेष आदि से कमर्बंध होता है और कमर् के उदय से दोष होते हQ। जैसे-ज्ञानावरण कमर् के उदय से जीव म्ें अज्ञान, दर्शनावरण के उदय से अदर्शन, दर्शनमोहनीय के उदय से मिथ्यात्व, चारित्रमोहनीय के उदय से अचारित्र आदि दोष होते हQ। वैसे ही प्रदोष, निन्हव, मात्सयर्, अंतराय आदि भावें के निमित्त से ज्ञानावरण, दर्शनावरण कमर् का आœाव होता है। केवली, श्रुत, संघ, धमर्

आदि को झूठा दोष लगाने से दर्शनमोहनीय का एवं कषायें की ती›ता से चारित्रमोहनीय का आœाव होकर बंध होता है। इस प्रकार से भावकमर् के लिए निमित्त कारण द्रव्यकमर् हQ एवं द्रव्यकमर् के लिए निमित्त कारण भावकमर् हQ, एेसा निश्चाय हो जाता है। जो लोग एेसा समझते हQ कि मेरी भूल से ही संसार है कमर् का उदय मेरा कुछ बिगाा्ड नहाR सकता, उन्हW अपनी एकांत मान्यता को हटा देना चाहिए। प्रश्न- जैसे किसी जीव म्ों दोष और आवरण का पूणर्तया नाश हो सकता है, एेसे ही किसी जीव म्ों बुद्धि ज्ञान का भी पूणर्तया नाश मान लेना चाहिए ? उत्तर- ठीक है। हम स्याद्वादी हQ। किसी जीव ने पृथ्वीकाय आदि को शरीर™प से ग्राहण करके छोा्ड दिया है, अत: उन पाषाण, मिóी आदि म्ों चैतन्य ज्ञान का सवर्था अभाव हो गया। इससे यह समझना चाहिए कि भस्म, लो‰ आदि पृथ्वीकाय सवर्था अजीव हQ। पृथ्वीकायिक म्ों ही जीव विद्यमान रहता है। दूसरी बात यह है कि मति, श्रुत आदि™प क्षयोपशम ज्ञान का अभाव हो जाता है किन्तु पूणर्-केवलज्ञान का किसी जीव म्ों अभाव होना संभव नहाR है। क्येंकि ज्ञान यह जीव का स्वाभाविक परिणाम है। आत्मा के परिणाम दो प्रकार के हQ-स्वाभाविक और आगंतुक। अनंतज्ञान आदि गुण स्वाभाविक हQ और अज्ञान आदि मल आगंतुक हQ। आगंतुक मिथ्यात्व, राग-द्वेष, अज्ञान आदि दोष के प्रतिपक्षी सम्यग्दर्शन आदि गुणें की वृद्धि हो जाने से दोषें का अभाव हो जाता है। मीमांसक- सम्पूणर् कर्मो से रहित भी आत्मा परमाणु, धमर्, अधमर् आदि अतीन्द्रिय पदार्थो को वैâसे जानेगा ? इनका ज्ञान तो वेद वाक्यें से ही होता है, अत: विÕा म्ों कोई सवर्ज्ञ नहाR हो सकता है। जैनाचायर्- सूक्ष्म, परमाणु आदि और राम-रावण, सुमे® आदि पदाथर् (२१) (२२)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) किसी के प्रत्यक्ष अवश्य हQ क्येंकि वे अनुमान ज्ञान के विषय हQ। सवर्ज्ञ भगवान अतीन्द्रिय ज्ञान से ही सूक्ष्मादि पदार्थों को जानते हQ, इन्द्रिय ज्ञान से नहाR, क्येंकि इन्द्रियाँ तो वतर्मान और नियत पदाथर् को ही विषय करती हQ, भूत, भविष्यत् के अनंत पदार्थों को नहाR। वेद वाक्यें से सूक्ष्मादि पदार्थों का ज्ञान मानने म्ों तो सबसे पहले वेद को सवर्ज्ञ का वाक्य कहना होगा, अन्यथा हम और आप जैसे अल्पज्ञ का कथन निर्दोष नहाR हो सकेगा। अत: कोई न कोई कमर्मल-कलंक रहित अकलंक आत्मा सवर्ज्ञ, सवर्दर्शी है, वही निर्दोष है यह बात सिद्ध हो जाती है। अब वह निर्दोष, सवर्ज्ञ आत्मा कौन हो सकता है ? इस बात की सिद्धि करते हQ- वे निर्दोष सवर्ज्ञ आप ही हQ चावार्क- कोई तीथËकर प्रमाण नहाR हQ, न कोई आगम हQ, न वेद हQ अथवा न कोई तवर्क अनुमान ही है बस एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। पृथ्वी, जल, आग्नि और वायु इन भूतचतुº्य से ही चैतन्य की उत्पत्ति होती है। जैनाचायर्- यह बात ठीक नहाR है, देखिए। यदि आप प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हQ तब तो कोई भी प्रत्यक्ष से सवर्ज्ञ के अभाव को सिद्ध नहाR कर सकते हQ। अच्छा! आप पहले इन्द्रिय प्रत्यक्ष से सारे विÕा म्ों घूमकर देख लो कि कहाR भी सवर्ज्ञ तीथËकर नहाR हQ, तभी आपका कहना सत्य होगा और यदि आपने सारे विÕा को देख लिया, जान लिया, तब तो आप स्वयं ही सवर्ज्ञ बन गये क्येंकि 'सवË जानातीति सवर्ज्ञ:' जो सभी को जानता है, वही सवर्ज्ञ है। तòवोपप्लववादी- सभी प्रमाण प्रमेय उपप्लुत ही हQ अथार्त् अभाव™प ही हQ, इसलिए सवर्ज्ञ कोई है ही नहाR। जैनाचायर्- आप सभी प्रमाण-ज्ञान, प्रमेय-जीवादि वस्तुआW का अभाव मानते हQ, तब आप अपना और अपनी मान्यता-शून्यवाद का आस्तित्व स्वीकार करते हQ या नहाR ? यदि करते हQ तब तो सवर्था शून्यवाद नहाR रहा। यदि अपना तथा अपनी मान्यता का भी आस्तित्व स्वीकार नहाR करते हQ, तब तो आपका कथन भी आस्तित्व रहित होने से वैâसे माना जायेगा, जैसे कि आकाश का कमल नहाR माना जा सकता है। विशेष- मीमांसक, चावार्क और तòवोपप्लववादी ये तीनें सवर्ज्ञ को मानते ही नहाR हQ एवं बौद्ध, सांख्य, वैशेषिक और बÇý्ावादी ये लोग सवर्ज्ञ को तो मानते हQ किन्तु उनकी मान्यताएं गलत हQ, इस बात का स्पº्करण आगे समयानुसार होगा। हे भगवन्! जो आत्मा कमर्मल रहित निर्दोष और सवर्ज्ञ है वह आप ही हQ क्येंकि आपके वचन युक्ति और शाŒा से आविरोधी हQ। वह आपका आविरोध इº-शासन, प्रसिद्ध-प्रत्यक्ष आदि प्रमाणें से बाधित नहाR होता है अथार्त् घातिया कर्मों के नº हो जाने से वीतरागता, सवर्ज्ञता और हितोपदेशिता ये तीन गुण आप अर्हंत म्ों ही घटित होते हQ अन्यत्र किसी म्ों घटित नहाR होते हQ, इसलिए आप अर्हंत ही निर्दोष सवर्ज्ञ हQ क्येंकि आपके वचनें म्ों किसी प्रकार का विरोध न होने से आपका मत बाधा रहित सवर् प्राणी को हितकर है और आपके शासन म्ों

संसार और मोक्ष तथा संसार के कारण और मोक्ष के कारण ये चार तÒव बाधा रहित हQ। ये चारें बाधा रहित वैâसे हQ ? इनकी समीक्षा देखिए- मोक्ष की समीक्षा सांख्य- प्रकृति और पु®ष का भेदज्ञान हो जाने पर चैतन्यमात्र स्व™प म्ों आत्मा का अवस्थान हो जाना मोक्ष है। सवर्ज्ञता प्रधान-जोंड का स्व™प है आत्मा का नहाR, क्येंकि ज्ञानादि अचेतन हQ। वे प्रकृति के ही स्व™प हQ। जैनाचायर्- यह आपका कथन असंभव है। हमारे यहाँ तो अनंतज्ञान, दर्शन, सुख आदि स्व™प चैतन्य म्ों अवस्थान हो जाने को ही मोक्ष कहा है, क्येंकि ज्ञानादि आत्मा के स्वभाव हQ, जैसे-चैतन्य। वे ज्ञानादि आत्मा को छोोंडकर अन्यत्र अचेतन म्ों नहाR पाये जाते हQ। ज्ञान से ही आत्मा सुख-दु:ख का अनुभव करता है। ज्ञान को आत्मा का स्वभाव नहाR मानने पर तो आत्मा का आfस्तत्व ही समाप्त हो जावेगा। वैशेषिक- बुद्धि, सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धमर्, अधमर् और संस्कार इन नव विशेष गुणें का नाश हो जाना ही मोक्ष है क्येंकि बुद्धि आदि आत्मा के स्वभाव नहाR हQ, आत्मा से भिVा हQ। जैनाचायर्- यह आपका कथन असंभव है। हमारे यहाँ तो अनंतज्ञान, दर्शन, सुख आदि स्व™प चैतन्य म्ों अवस्थान हो जाने को ही मोक्ष कहा है, क्येंकि ज्ञानादि आत्मा के स्वभाव हQ, जैसे-चैतन्य। वे ज्ञानादि आत्मा को छोोंडकर अन्यत्र अचेतन म्ों नहाR पाये जाते हQ। ज्ञान से ही आत्मा सुख-दु:ख का अनुभव करता है। ज्ञान को आत्मा का स्वभाव नहाR मानने पर तो आत्मा का आfस्तत्व ही समाप्त हो जायेगा। यदि मुक्ति म्ों बुद्धि-ज्ञान और सुख का ही विनाश माना जायेगा, तब मुक्ति के लिए कौन बुद्धिमान प्रयत्न करेगा। (२३) (२४)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) ज्ञान आत्मा से सवर्था भिV्ा नहाR है कतार् और करण की अपेक्षा से कथंचित् ही भिV्ा है। हाँ! इतनी बात अवश्य है कि क्षायोपशमिक ज्ञान और सातावेदनीयजन्य सुख का तो हम लोग भी मुक्ति म्ें विनाश मान लेते हQ किन्तु क्षायिक-पूणर्ज्ञान और अतीन्द्रिय अव्याबाध सुख का तो मोक्ष म्ें अभाव नहाR है प्रत्युत ज्ञान और सुख की पूणर्ता के लिए ही मोक्ष पाने का प्रयत्न किया जाता है। वेदांतवादी- मुक्त जीव के अंनत सुख संवेदन™प ज्ञान तो है, किन्तु उन्हW बा¢ पदाथर् का ज्ञान नहाR है। जैनाचायर्- पहले यह बताओ कि मुक्त जीव के इन्द्रियें का अभाव है इसलिए बा¢ पदाथर् का ज्ञान नहाR है, या बा¢ पदाथर् का अभाव है इसलिए उनका ज्ञान नहाR है ? यदि बा¢ पदाथर् का अभाव कहW तो सुख का भी अभाव हो जायेगा, क्येंकि आप अद्वैतवादियें ने सुख को भी बा¢ पदाथर् ही माना है। यदि इन्द्रिय का अभाव कहो, तब तो उन्हW सुख का अनुभव वैâसे होगा ? बौद्ध- आœाव रहित चित्त की उत्पत्ति ही मोक्ष है। जैनाचायर्- यह भी ठीक नहाR है क्येंकि ज्ञान क्षणें म्ें अन्वय पाया जाता है तथा निरन्वय क्षण क्षय (अन्वय रहित क्षण-क्षण म्ें क्षय होने की व्यवस्था) को एकान्त से स्वीकार करने पर आपके द्वारा मान्य मोक्ष की सिद्धि बाधित ही है। इस प्रकार से अन्य मतावलंबियें द्वारा मान्य मोक्ष तöव म्ें बाधा आती है, अत: जैनें द्वारा मान्य 'कृत्स्नकमर्विप्रमोक्षो मोक्ष:' सम्पूणर् कर्मो का आत्मा से पृथक् हो जाना मोक्ष है, वहाँ पर अनंत गुणें की सिद्धि हो जाती है। मोक्ष के कारण की समीक्षा- सांख्य ज्ञानमात्र को ही मोक्ष का कारण मानते हQ, सो भी ठीक नहाR है, क्येंकि सवर्ज्ञ भगवान के क्षायिक अनंतज्ञान की पूणर्ता हो जाने पर भी अघातिया कर्मों के शेष रहने से उनका परमौदारिक शरीर पाया जाता है, यदि ज्ञान उत्पV्ा होते ही मोक्ष हो जावे, तो यहाँ पर सवर्ज्ञ का रहना, उपदेश आदि देना नहाR घटेगा तथा यदि एकांत से ज्ञान ही मोक्ष का कारण मान लिया जावे, तो सभी के आगम म्ें दीक्षा आदि बालचारित्र का अनुष्ठान एवं सकल दोषें के अभाव™प अभ्यन्तर चारित्र का जो वणर्न है, वह सब व्यथर् हो जावेगा किन्तु सभी ने तो दीक्षा ग्राहण, गे®आ वŒा धारण और ध्यान आदि को माना ही है। एेसे ही कोई मात्र सम्यग्दर्शन से या कोई-कोई मात्र चारित्र से, ि›âयाकांड से ही मुक्ति मानते हQ। उन सबकी मान्यता गलत है। हम जैनें ने तो 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमागर्:' इस आगम सूत्र से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनें की एकता को ही मोक्ष माना है और यही मान्यता सुसंगत है इसलिए जैनाचायर् द्वारा मान्य मोक्ष के कारण तöव ठीक ही हQ। कोई मोक्ष को अकारणक ही कहते हQ किन्तु यह मान्यता बिल्कुल गलत है क्येंकि अिनमित्तक मोक्ष होने से तो हमेशा ही सभी जीवें को मोक्ष हो जावेगा, पुन: कोई संसारी और दु:खी रहेगा ही नहाR, किन्तु एेसा तो प्रत्यक्ष से ही बाधित है। संसार की समीक्षा- सांख्य कहता है कि प्रकृति-जाेड को ही संसार है आत्मा को नहाR है,

किन्तु एेसी एकांत मान्यता गलत है। हम देखते हQ कि जोड के संसगर् से यह संसारी आत्मा संसार म्ों जन्म, मरण आदि अनेकें दु:खें को उठा रही है। 'संसरणं संसार:' संसरण करना-एक गति से दूसरी गति म्ों गमन करना इसी का नाम संसार है। इसके पंचपरिवतर्न की अपेक्षा पाँच भेद हQ-द्रव्य संसार, क्षेत्र संसार, काल संसार, भव संसार और भाव संसार। इनका विवेचन फिर कभी किया जावेगा, इसलिए संसार तòव भी सिद्ध ही है। संसार के कारण की समीक्षा- सांख्यें ने मिथ्याज्ञान मात्र को ही संसार का कारण माना है, सो ठीक नहाR है क्योWकि मिथ्याज्ञान का अभाव हो जाने पर भी राग आदि दोनें का अभाव न होने से संसार का अभाव नहाR होता है। यह बात स्वयं सांख्यें ने भी मान ली है एवं हम जैनें को मान्य संसार के कारण आगम म्ों प्रसिद्ध हQ 'मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतव:' मिथ्यादर्शन, आfवरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पाँच बंध के कारण हQ। बंध से ही संसार होता है अत: बंध के कारण ही संसार के कारण माने गये हQ। किन्हाR का कहना है कि संसार के कारण मिथ्यात्व आदि अनादिकालीन हQ अत: ये निर्हेतुक हQ किन्तु एेसी बात नहाR है यद्यपि ये संसार के कारण अनादि हQ फिर भी अहेतुक (अकारक) नहाR हQ। इनके कारण द्रव्यकमर् मौजूद हQ तथा द्रव्यकमर् के कारण ये भावकमर् हQ, इनम्ों परस्पर म्ों कायर्-कारण भाव पाया जाता है इसीलिए इन मिथ्यात्व आदि कार्यों का सम्यग्दर्शन आदि कारणें से विनाश भी हो सकता है अन्यथा निर्हेतुक का विनाश होना असंभव ही हो जाता। इस प्रकार से आप्त-अर्हंत भगवान् के शासन म्ों मोक्ष और मोक्ष के कारण तथा संसार और संसार के कारण ये चार तòव अबाधित ™प से सिद्ध हQ अत: आपके वचन युक्ति और शाŒा से आfवरोधी सिद्ध हQ और इसीलिए आप निर्दोष (२५) (२६)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) परमात्मा हQ, यह बात सिद्ध हो जाती है। हे भगवन्! अपने शासन™पी अमृत से जो बहिर्भूत हQ और "मQ आप्त हूँ" इस प्रकार आfभमान से दग्ध हQ, उन एकांतवादियें का शासन प्रत्यक्षादि प्रमाणें से बाधित है। जैसे कि- सांख्य कहता है कि सुखादि अचेतन हQ क्येंकि वे उत्पVा होते हQ किन्तु जैनाचायर् सुख, ज्ञान आदि को चैतन्य आत्मा म्ें ही मानते हQ अन्यत्र नहाR और प्रत्येक द्रव्य को उत्पाद, व्यय, धÇौव्यात्मक मानते हQ। बौद्ध कहता है कि वणर् आदि परमाणु ही निर्विकल्प ज्ञान म्ें झलकते हQ, वे ही हQ, स्वंâध नाम की कोई चीज नहाR है। किन्तु जैनाचायर् कहते हQ कि परमाणु अत्यंत सूक्ष्म हQ। वे सवर्ज्ञ के अथवा मन:पयर्य ज्ञानी, अवधिज्ञानी के ही ज्ञान का विषय हो सकते हQ अन्य मति, श्रुात ज्ञान के विषय नहाR हो सकते हQ। दो, तीन, चार से लेकर अनंतानंत परमाणुआW का मिलकर स्वंâध बनता है, उसम्ें भी कुछ स्वंâध अचाक्षुष हQ। शब्दादि स्वंâध भी Âि° के विषय नहाR हQ मात्र चक्षु इन्द्रिय गम्य स्थूल स्वंâध ही अपने ज्ञान म्ें झलकते हQ और कल्पना मात्र नहाR हQ। चावार्क भूतचतु॰य से चैतन्य की उत्पत्ति मानता है किन्तु चैतन्य तôव अनादिनिधन है। बÇýाद्वैतवादी एक बÇýा से ही चेतन-अचेतन की उत्पत्ति मानता है किन्तु सवर्था चेतन-अचेतन द्रव्य अपनी सत्ता को लिए हुए पृथक्-पृथक् ही हQ। हे नाथ! नित्य अथवा आfनत्य आदि एवंâात मान्यताआW के दुराग्राही स्व और पर के वैरी मिथ्याÂि° जनें म्ें किसी के यहाँ भी पुण्य-पापादि ि›âयाआW एवं परलोक आदि भी सिद्ध नहाR हो सकते हQ। यदि कोई कहे कि शून्यवादियें ने और अद्वैतवादियें ने तो स्वयं ही पुण्य- पाप, परलोक आदि को माना ही नहाR है अन्यथा उनका शून्यवाद नहाR टिकेगा और द्वैतवाद आ जायेगा। आचायर् कहते हQ कि एेसा कहना ठीक नहाR है क्येंकि उन लोगें ने भी पुण्य-पाप आदि को और परलोक को भी संवृति (कल्पना) से माना है और अद्वैतवादियें ने आfवद्या से प्राय: सुख-दु:ख, पुण्य-पाप और इहलोक, परलोक को स्वीकार किया ही है किन्तु ये सब एकांतवादी दुराग्राही हQ अत: इनके यहाँ किसी भी तôव की सिद्धि असंभव है। सांख्य सभी तôवें को भाव™प ही मानता है उसके यहाँ अभाव या विनाश नाम की कोई चीज नहाR है उसका कहना है कि मिôी म्ें घट विद्यमान है, वुंâभार, दण्ड, चाक आदि निमित्तें से वह घट आविर्भूत हुआ है न कि उत्पVा। कुम्हार, चाक आदि दीपक की तरह ज्ञापक निमित्त हQ कारक निमित्त नहाR हQ इत्यादि। आचायर् कहते हQ कि यदि 'अभाव' को नहाR माना जाएगा, तो प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, इतरेतराभाव और अत्यंताभाव इन चारें अभावें का लोप हो जावेगा जो कि सवर्था वि®द्ध है। अब इन अभावें के लक्षण बताते हQ- प्रागभाव आदि का वणर्न भावैकांते पदाथार्ना - मभावानामपन्हवात्। सवार्त्मकमनाद्यन्त-मस्व™पमतावकम्।। ९।। सांख्य एकांत से पदार्थों को भाव™प ही मानता है। इस पर जैनाचार्यों का कहना है कि सभी पदार्थों को

भाव™प ही मानने पर तो अभावें का लोप हो जायेगा। अभाव के चार भेद हQ-प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, इतरेतराभाव और अत्यंताभाव। प्रागभाव को नहाR मानने पर तो सभी कायर् अनादि हो जाय्ेंगे। प्रध्वंस धमर् का लोप करने पर सभी अनंत हो जाय्ेंगे। इतरेतराभाव के अभाव म्ें सभी पदाथर् सवार्त्मक हो जाय्ेंगे तथा अत्यंताभाव के न मानने से सभी पदाथर् अस्व™प-अपने स्वभाव से शून्य हो जाय्ेंगे। प्रागभाव- कायर् का उत्पVा होने के पहले न होना प्रागभाव है। जैसे-घट बनने के पहले मिóी ™प कारण म्ें घट™प कायर् का अभाव है वह प्राक्-पहले अभाव न होना प्रागभाव है। द्रव्य की अपेक्षा प्रागभाव अनादि है और पयार्य की अपेक्षा आदि है। घट बनाने के लिए मिóी के पिंड को चाक पर रखकर घुमाया। उसकी स्थास, कोश, कुशूल आदि पयार्य्ें बनाR उनम्ें जिस क्षण के बाद ही घट बनने वाला है उस क्षण को त्र+जुसूत्र नय की अपेक्षा से प्रागभाव कहते हQ इसके पूवर्-पूवर् पयार्यें को भी प्रागभाव कहते हQ किन्तु आन्तिम क्षण की पयार्य का विनाश होने पर ही घट बनता है इसलिए प्रागभाव का अभाव होकर घट बनता है। यदि मिóी म्ें घट का प्रागभाव न मान्ें तो घटद्रव्य अनादिकाल से मिóी म्ें बना रहेगा। प्रागभाव के न मानने पर कायर्-द्रव्य अनादि हो जाय्ेंगे, अत: प्रागभाव मानना ज™री है। प्रध्वंसाभाव- यदि प्रध्वंस को न मान्ें तो घट आदि कार्यों का कभी भी नाश नहाR होगा पुन: वे अनंत हो जाय्ेंगे किन्तु एेसा नहाR है। विद्यमान घट म्ें प्रध्वंसाभाव का अभाव करके अथार्त् घट का प्रध्वंस करके कपाल उत्पVा होते हQ इसलिए प्रध्वंसाभाव भी वास्तविक है। (२७) (२८)

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) इतरेतराभाव- एक पयार्य का दूसरी पयार्य म्ें न होना इतरेतराभाव है। जैसे-पुद्गल की पुस्तक पयार्य म्ें चौकी पयार्य का अभाव है। जीव की मनुष्य पयार्य म्ें देव पयार्य का अभाव है। यदि इस इतरेतराभाव को न माना जाय, तो एक मनुष्य पयार्य म्ें देव, नारक आदि पयार्य्ें आ जाय्ेंगी। पुन: सभी पदाथर् अन्य स्व™प हो जाव्ेंगे। अत: इतरेतराभाव भी मान्य है। अत्यंताभाव- एक द्रव्य म्ें दूसरे द्रव्य का अभाव अत्यंताभाव है। जैसे- जीव द्रव्य पुद्गल™प नहाR होता है। पुद्गल जीव™प नहाR होता है। सांख्यमत बौद्ध आदि मत ™प नहाR होता है, इत्यादि ™प से यदि अत्यंताभाव को नहाR मान्ेंगे तो सभी वस्तुएँ पर स्वभाव के मिश्राण हो जाने से अपने स्वभाव से शून्य हो जाय्ेंगी, तो वे अवस्तु हो जाव्ेंगी अत: यह भी आवश्यक है। भावाथर्- जिसके अभाव म्ें नियम से कायर् की उत्पत्ति होवे, वह प्रागभाव है। जिसके होने पर नियम से कायर् का विनाश होवे वह प्रध्वंस है। जिसके सद्भाव म्ें दूसरी अनंतें पयार्यें का अभाव रहे वह इतरेतराभाव है। घट-पट का परस्पर म्ें इतरेतराभाव है। भिV्ा-भिV्ा द्रव्य म्ें अत्यंताभाव है। जीव स्व™प से आस्तित्व™प होकर भी पुद्गलादि से अभाव™प है क्येंकि सभी पदाथर् स्व™प से भाव™प और पर™प से अभाव™प लक्षण वाले ही हQ। मीमांसक शब्द को नित्य मानता है अत: उसम्ें प्रागभाव नहाR मानता है किन्तु जैनाचार्यों ने शब्द को पौद्गलिक शब्द वगर्णा ™प होने से नित्य माना है और पयार्य की Âि° से आनित्य माना है इसलिए शब्द म्ें प्रागभाव घटित हQ। वक्ता के तालु आदि प्रयत्न से शब्द उत्पV्ा होते हQ और विन° भी होते हQ। नैयायिक अभाव को सवर्था तुच्छाभाव ™प ही मानता है किन्तु जैनाचायर् अभाव को भावांतर ™प मानते हQ। जैसे-‘अजैन:’ कहने से जैन के बजाय और किसी अन्य धमर् वाले व्यक्ति का बोध होता है न कि सवर्था अभाव का। दीपक के बुझने पर प्रकाश का अभाव हुआ मतलब अंधकार का सद्भाव हुआ। प्रकाश और अंधकार दोनें पुद्गल की ही पयार्य्ें हQ अत: जैनाचार्यों द्वारा मान्य अभाव भावांतर (भिV्ा भाव) ™प ही है। नैयायिक शब्द को अमूतिर्क-आकाश का गुण अमूतिर्क ही मानता है उसका कहना है कि ‘शब्द पुद्गल का स्वभाव नहाR है क्येंकि उसका स्पर्श नहाR पाया जाता है सुखादि के समान’ यदि शब्द को पुद्गल की पयार्य मानोगे, तब तो उनका चक्षु से देखना, मयार्दा को उल्लघंन कर आगे भी पैâलना, बिखरना, कणर् म्ें भर जाना, एक ही श्रोत्रेन्द्रिय म्ें प्रवेश हो जाना आदि अनेक दोष आते हQ। शब्द तो निश्छिद्र महल के भीतर से निकल जाते हQ एवं आभ्यंतर म्ें बाहर से आकर प्रवेश कर जाते हQ, व्यवधान का भेदन भी नहाR करते हQ अतएव वे पौद्गलिक नहाR हQ। जैनाचायर्- शब्द पुद्गल की ही पयार्य हQ। अत: मूतिर्क ही हQ, स्पर्श, रस, गंध, वणर् से सहित हQ क्येंकि “स्पर्शरसगंधवणर्वन्त: पुद्गला:’ यह सूत्र है। बहुत से पुद्गल स्वंâध भी एेसे अचाक्षुष हQ जिनका स्पर्श आदि व्यक्त

नहाR है, एतावता उनको अमूतिर्क नहाR कह सकते एवं न उनका अभाव ही कर सकते हQ तथा शब्द से प्रतिघात भी देखा जाता है। कोई मोटी एवं कोंडी पूंाडी आदि खा रहा है, उसके कोंड-कोंड शब्देंं से प्राय: प्रतिघात देखा जाता है। जैसे-कोई पु®ष उच्चध्वनि से पाठ कर रहा है और दूसरा धीरे-धीरे बोल रहा है, तो उसकी ध्वनि दब जाती है अत: शब्द का स्पर्श नहाR मानना गलत है। जो आपने 'चक्षु आदि से दिखना चाहिए' इत्यादि दोष दिये हQ वे भी दोष गंध परमाणुआW म्ें भी मानने पांडWगे क्येंकि गंध परमाणु भी पुद्गल की पयार्य हQ, वे भी नहाR दिखते हQ। यदि आप कहW कि गंध परमाणु अÂश्य हQ अत: चक्षु इन्द्रिय से नहाR देखे जाते हQ, पुन: शब्देंं को भी तथैव मानो, क्या बाधा है ? पवन से प्रेरित होने पर उन शब्देंं का विस्तृत होना आदि मानो तो गंध परमाणुआW म्ें भी मानना पांडेगा। भित्ति आदि से परमाणुआW का प्रतिघात प्रसिद्ध है तथैव शब्देंं का भी प्रतिघात प्रसिद्ध है एवं जो आपने कहा कि स्वंâध™प से परिणत मूतिर्मान शब्द परमाणुआW के द्वारा श्रोता का कान पूणर्तया भर जायेगा एवं पौद्गलिक शब्द एक ही श्रोता के कान म्ें प्रवि° हो जाव्ेंगे पुन: उसी योग्य देश म्ें स्थित अन्य श्रोताआW को कुछ भी शब्द सुनाई नहाR पांडWगे, इत्यादि दोष तो आपके गंध परमाणुआW म्ें भी आ जाव्ेंगे। वे भी गंध परमाणु नाक म्ें भर जाव्ेंगे तो स्वांस लेना ही कठिन हो जावेगा एवं वे नाक म्ें भी घुस जाव्ेंगे तो अन्य किसी सूंघने वाले को कुछ भी गंध नहाR आ सकेगी, इस पर नैयायिक ने कहा कि हमारे यहाँ एेसा माना है कि सÂश परिणाम वाले गंध परमाणु सब तरफ पैâल जाते हQ अत: उक्त दोष नहाR आते हQ। यदि समान परिणाम वाले गंध परमाणु सब तरफ पैâल जाते हQ अत: उक्त दोष नहाR आते हQ तब तो समान परिणाम वाले शब्द परमाणु भी नाना दिशाआW म्ें पैâल जाते हQ अत: एक श्रोता को ही सुनाई देवे इत्यादि दोष नहाR आते हQ।

यदि (२९) (३०)

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) आप कहW कि गंध परमाणुआW को ज्ञान विशेष की अन्यथानुपपत्ति होने से निश्चाय हो जाता है उसम्ें भाग्य की कल्पना नहाR है किन्तु शब्द के आगमन म्ें भाग्य की कल्पना कीजिए। इस पर आचार्यों का कहना है कि-श्रोताआW के जिन-जिन श्रुतज्ञानावरण ™प शब्दावरण का क्षयोपशम होता है उसी प्रकार से उपलब्धि योग्य परिणाम विशेष के होने से उन-उन ही अक्षरें का सुनना होता है। जो आपने कहा कि निश्छिद्र महल से निकलना आदि होने से शब्द पुद्गल नहाR है सो भी ठीक नहाR है क्येंकि छिद्ररहित भवन से निकलना एवं प्रवि° होना पुद्गल म्ें वि®द्ध नहाR है क्येंकि वे शब्द पुद्गल सूक्ष्म स्वभाव वाले हQ जैसे तेल, घी आदि चिकने पदाथर् निश्छिद्र घांडे से बाहर निकलकर घांडे को चिकना कर देते हQ एवं उष्ण, शीत, स्पर्श आदि निश्छिद्र घांडे म्ें प्रवि° होकर उसकी अभ्यंतर की वस्तु गमर् या ठंडी कर देते हQ यह बात सवर्जन सुप्रसिद्ध है। तòवाथर्सूत्र म्ें "शब्दबंधसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवंतश्चा" इस सूत्र म्ें शब्द को पुद्गल की पयार्य सिद्ध किया है। अत: शब्द आकाश का गुण नहाR है और न अमूतिर्क ही है, एेसा समझना चाहिए। यही कारण है कि आजकल शब्दें को टेपरिकार्डर म्ें भर लेते हQ, रेडियो, टेलीफोन आदि द्वारा हजारें मील दूर पहुँचा देते हQ यह सब पौद्गलिक शक्ति का ही विकास हो रहा है। इन सभी आविष्कारें से भी शब्द पौद्गलिक और मूतिर्क सिद्ध हो रहे हQ। अ°सहœीकार आचायर्वयर् श्री विद्यानंद महोदय ने ग्रंथ के प्रथम अध्याय म्ें भावैकांत का खंडन किया है अथार्त् जो सांख्य आदि सभी पदार्थों को सवर्था सद्भाव ™प ही स्वीकार करते हQ उनका खंडन करके प्रागभाव आदि चार प्रकार के अभावें को सिद्ध किया है पुन: जो लोग सभी पदार्थों को अभाव ™प ही मानते हQ उनका निरसन कर रहे हQ। बौद्धें के यहाँ माध्यमिक नाम का एक भेद है। ये लोग सभी जगत को सवर्था शून्य™प ही मानते हQ। उनका कहना है कि 'यह जगत सवर्था शून्य™प ही है जो कुछ भी प्रतिभास हो रहा है वह असत्य है। जो चेतन-अचेतन तòव दिख रहे हQ, वे संवृति (कल्पना) ™प हQ एवं शून्यवाद को सिद्ध करने म्ें जो आगम अनुमान आदि प्रमाण हQ वे भी काल्पनिक हQ। इस पर जैनाचायर् प्रश्न करते हQ कि आप बौद्धें के यहाँ वह 'संवृति' क्या चीज है ? यदि कहो कि संवृति का अथर् है अपने स्व™प से होना' तब तो हमने भी स भी वस्तुआW का स्व™प से अस्तित्व माना है। यदि कहो कि 'संवृति-पर™प से न होना' यह अथर् भी हमारे अनुवूâल ही है क्येंकि हम लोग भी वस्तु म्ें पर™प से नास्ति धमर् मानते हQ। यदि कहो कि 'विचारें का न होना संवृति है' तब तो शून्य के साध् क वाक्य भी वैâसे बन्ेंगे ? अत: बांडे आश्चायर् की बात है कि दिग्नागाचायर् आदि आज भी इस शून्यवाद को सिद्ध करने म्ें लगे हुए हQ इसम्ें उनके मोहनीय कमर् के ती्र उदय व् â सिवाय और कोई भी कारण नहाR हो सकता है क्येंकि जब सवर्था शून्यवाद ही है, तब आपके बुद्ध

भगवान, आगम आदि भी वैâसे सिद्ध हो सव्ेंâगे ? बौद्ध- वास्तव म्ें हमारे यहाँ बुद्ध भगवान और आगम आदि सभी विभüम ™प ही हQ। ये सभी संवृति से ही मान्य हQ अथार्त् काल्पनिक हQ। जैन- तब तो प्रश्न यह होता है कि इस विभüम म्ें विभüम है या आfवभüम ? यदि विभüम म्ें आfवभüम है तो सभी विभüम ™प नहाR रहे और यदि विभüम म्ें भी विभüम है तो विभüम वैâसे रहेगा ? आfपतु विभüम म्ें विभüम के हो जाने से आfवभüम-सत्य ही सिद्ध हो जायेगा इसलिए सवर्था नैरात्म्यवाद श्रेयस्कर नहाR है क्योंकि उसके मानने वाले तो सबसे पहले अपना, अपने भगवान का, सभी का ही घात कर लेते हQ। कोई-कोई भा6 लोग भाव और अभाव इन दोनें को भी मान रहे हQ किन्तु दोनें को परस्पर निरपेक्ष मानते हQ, इसलिए उनकी मान्यता भी गलत है। क्योंकि सभी वस्तु स्व™प के समान पर™प से आfस्त™प एवं पर™प के समान स्व™प से नास्ति™प नहाR है तथा आfस्त धमर् नास्तित्व की एवं नास्ति धमर् आfस्तत्व की अपेक्षा रखता है। इसलिए 'उभयैकात्म्य' भी गलत है। कोई बौद्ध लोग वस्तु को सवर्था सत्-असत् धमर् से रहित होने से अवक्तव्य मानते हQ। उनका कहना है कि प्रत्येक वस्तु सवर्था 'अवाच्य' है क्योंकि शब्दें से उसका कथन नहाR कहा जा सकता है किन्तु यह एकान्त भी श्रेयस्कर नहाR है। जैनाचायर् वस्तु को सत्™प-भाव™प भी मानते हQ, असत्-अभाव™प भी मानते हQ, भावाभाव-उभयात्मक भी मानते हQ तथा अवक्तव्य-अवाच्य भी मानते हQ। सो वैâसे ? भावाभावाद्यनेकांत सिद्धि हे भगवन्! आपके शासन म्ें सभी वस्तुएँ कथंचित् भाव-आfस्त-सत्™प हQ और वे ही सभी वस्तुएँ कथंचित् अभाव-नास्ति-असत्™प हQ, कथंचित् उभय आदि सप्तभंग™प से प्रसिद्ध हQ। यथा- (३१) (३२)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) 'प्रश्नवशादेकत्र वस्तुन्यविरोधेन विधिप्रतिषेधकल्पनासप्तभंगी' प्रश्न के निमित्त से एक ही वस्तु म्ें आfवरोध ™प से विधि और निषेध की कल्पना सप्तभंगी कहलाती है। इस सप्तभंगी को जीव द्रव्य म्ें घटित करते हQ- १. स्यात् जीव द्रव्य आfस्त ™प है, २. स्यात् जीव द्रव्य नास्ति ™प है, ३. स्यात् जीव द्रव्य आfस्त नास्ति ™प है, ४. स्यात् जीव द्रव्य अवक्तव्य है, ५. स्यात् जीव द्रव्य आfस्त अवक्तव्य है, ६. स्यात् जीव द्रव्य नास्ति अवक्तव्य है, ७. स्यात् जीव द्रव्य आfस्तनास्ति अवक्तव्य है, यहाँ पर आfस्तत्वादि एकान्त का निषेधक और अनेकांत का द्योतक 'कथंचित्' इस अपरनाम वाला 'स्यात्' शब्द बहुत ही महत्वशाली है, उसी का स्प°करण- प्रथम भंग म्ें जीव द्रव्य स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से आfस्त™प है। द्वितीय भंग म्ें वही जीव द्रव्य पर-अजीवादि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से नास्ति ™प है अथार्त् जीव द्रव्य म्ें पर-अजीव का आfस्तत्व नहाR है। वही जीव द्रव्य ›âम से स्व और पर दोनें की अपेक्षा करने से आfस्तनास्ति ™प है। वही जीव द्रव्य युगपत् दोनें धर्मों को न कह सकने से अवक्तव्य-अवाच्य ™प है। वही जीव द्रव्य स्वचतु°य से तथा युगपत् स्वपरचतु°य से विवक्षित करने से 'आfस्त अवक्तव्य' इस पाँचव्ें भंग ™प है। वही जीवद्रव्य परचतु°य तथा युगपत् स्वपरचतु°य की अपेक्षा से नास्ति अवक्तव्य ™प है। वही जीवद्रव्य स्वपरचतु°य की ›âम और युगपत् अपेक्षा रखने से 'आfस्तनास्ति अवक्तव्य' इस सातव्ें भंग ™प है। यह कथन बिल्कुल ठीक नहाR है क्येंकि प्रत्येक वस्तुएँ स्व™प से सत् ™प एवं पर™प से असत्-अभाव ™प हQ तथा आfस्त धमर् नास्तित्व का आfवनाभावी है वैसे ही नास्ति धमर् आfस्तत्व के बिना नहाR रह सकता है। जब प्रथम भंग म्ें भाव प्रधान रहता है, तब शेष छहें भंग गौण हो जाते हQ एवं जब द्वितीय भंग का अभाव धमर् प्रधान रहता है, तब भी शेष छह भंग गौण हो जाते हQ। इस प्रकार से 'आfपर्तानपिर्त सिद्धेः' सूत्र के अनुसार आfपर्त-विवक्षित धमर् प्रधान रहता है तथा अनपिर्त-आfववक्षित धमर् गौण रहता है तभी वस्तु तöव की सिद्धि होती है। जैसे जीव का जब नित्य धमर् प्रधान किया जाता है, तब आfनत्य धमर् न° न होकर गौण हो जाता है एवं जब आfनत्य धमर् विवक्षित-कहा जाता है तब नित्य धमर् आfववक्षित-गौण हो जाता है। ये आfस्त-नास्ति नित्य-आfनत्य आदि धमर् यद्यपि परस्पर विरोधी दिखते हQ लेकिन प्रत्येक वस्तु म्ें पाये ही जाते हQ। प्रश्न- एक वस्तु म्ें प्रत्यक्षादि से वि®द्ध भी विधि प्रतिषेध कल्पना कर लेना चाहिए ? उत्तर- नहाR, क्येंकि सूत्र म्ें 'आfवरोधेन' पद है, जिसका अथर् है प्रत्यक्ष अनुमान और आगम आदि से आfव®द्ध धर्मों म्ें ही सप्तभंगी घटित करना। प्रश्न- प्रत्येक वस्तु म्ें अनंत धमर् हQ अतः 'अनंत भंगी' हो जाव्ें, सात ही भंग क्यें ? उत्तर- प्रत्येक वस्तु के अनंत धर्मों म्ें से प्रत्येक धमर् म्ें सप्तभंगी घटित होती है इसलिए अनंत भंगी नहाR हेंगी। भंग सात ही क्यें ? शिष्यें के द्वारा उतने ही प्रश्न

होते हQ। सात ही प्रश्न क्यें ? तो सात प्रकार की ही जिज्ञासा होती हQ। जिज्ञासा सात प्रकार की ही क्यें? तो सात प्रकार का संशय होता है। संशय सात प्रकार का ही क्यें ? तो उस संशय के विषयभूत वस्तु के धमर् सात प्रकार के ही हQ। इस प्रकार से सप्तभंगी से सिद्ध वस्तु ही अथर् ›âयाकारी हQ अन्यथा वह वस्तु अवस्तु-आकाश पुष्पवत् सवर्था ही अभाव™प हो जाएगी अत: हे भगवन्! सभी प्रकार के विरोध आदि दोषें से रहित आपका स्याद्वाद शासन जयवंत होवे। N : श् (३३) (३४)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (३५) (३६) अथ द्वितीय: परिच्छेद: अद्वैत एकांत म्ें दोष अद्वैतैकान्तपक्षेÓपि, Â°ो भेदो वि®ध्यते। कारकाणां ि›âयायाश्चा, नैवंâ स्वस्मात्प्रजायते।।२४।। यदि अद्वैत™प है सब जग, यह एकांत लिया जावे। तब तो कारक और ि›âया का, भेद दिखे वह नहिं पावे।। दिखता है साक्षात् भेद जो, वह भी है वि®द्ध होगा। क्येंकि एक ही बÇÿा ही, निज से उत्पV नहाIR होता।।२४।। अन्वयाथर्- (अद्वैतैकांतपक्षेÓपि कारकाणां ि›âयायाश्चा Â°: भेद: वि®ध्यते) यदि अद्वैत ™प एकांत पक्ष लिया जाये, तो कारक और ि›âयाआW का जो भेद दिख रहा है, वह वि®द्ध हो जाता है (एवंâ स्वस्मात् न जायते) क्येंकि कोई भी अपने से ही आप उत्पV नहाIR हो सकता है।। कारिकाथर्- बÇÿाद्वैत, शब्दाद्वैत, ज्ञानाद्वैत, चित्राद्वैत आदि अद्वैत एकांत पक्ष म्ें भी कारक और ि›âयाआW का देखा गया भेद विरोध को प्राप्त होता है, क्येंकि कोई भी एक (बÇÿा) अपने से ही आप उत्पV नहाIR होता है। अद्वैत म्ें शुभ-अशुभ आदि द्वैत नहाIR बनते कमर्द्वैतं फलद्वैतं, लोकद्वैतं च नो भवेत्। विद्याÓविद्याद्वयं न स्याद्बंधमोक्षद्वयं तथा।।२५।। पुण्य-पाप द्वय, सुख-दुख फल द्वय, इह परलोक द्वैत जग म्ें। विद्या और आfविद्या द्वय अ®, बंध-मोक्ष द्वय नहिं हेंगे।। इन द्वैतें म्ें एक द्वैत भी, यदि मानें अद्वैत नहाIR। अत: बÇÿा या शब्द ज्ञानमय, जगत् एकमय घटे नहाIR।।२५।। अन्वयाथर्- (कमर्द्वैतं फलद्वैतं लोकद्वैतं च नो भवेत्) इस अद्वैत सिद्धांत के मानने से शुभ-अशुभ कमर् का युगल, उसके फलस्व™प पुण्य-पाप का युगल अथवा सुख-दु:ख का युगल, इहलोक-परलोक का युगल™प द्वैत नहाIR बन सकता है। (विद्याविद्याद्वयं तथा बंधमोक्षद्वयं न स्यात्) इसी प्रकार विद्या और आfविद्या का द्वैत तथा बंध और मोक्ष का द्वैत भी नहाIR बन सकता है।। कारिकाथर्- इस अद्वैत एकांत पक्ष म्ें दो कमर्, दो फल, दो लोक नहाIR बन सकते हQ उसी प्रकार से विद्या और आfविद्या, बंध और मोक्ष भी घटित नहाIR हो सकते हQ।। अद्वैत म्ें द्वैत आ जाता है हेतोरद्वैतसिद्धिश्चेद्-द्वैतं स्याद्धेतुसाध्ययो:। हेतुना चेद्विना सिद्धि-र्द्वैतं वा*मात्रतो न किम्।।२६।। यदि अद्वैतसिद्धि हेतू से, तब तो साध्य और साधक। द्वैत हुए क्येंकि बÇÿा है, साध्य हेतु उसका ज्ञापक।। यदी हेतु के बिना सिद्ध है, यह अद्वैत वचन से ही। तब तो द्वैतसिद्धि भी क्यें नहिं, होवे वचनमात्र से ही।।२६।। अन्वयाथर्- (हेतो: अद्वैतसिद्धि: चेत् हेतु साध्ययो: द्वैतं स्यात्) यदि हेतु से अद्वैत की सिद्धि मानें तब तो हेतु और साध्य के मानने पर द्वैत हो जाता है (चेत् हेतुना बिना सिद्धि: वा*मात्रत: द्वैतं किंâ न) यदि हेतु के बिना ही अद्वैत की सिद्धि मानते हो, तब तो वचन मात्र से ही द्वैत की सिद्धि भी क्यें न हो जावे ? कारिकाथर्- यदि हेतु से अद्वैत की सिद्धि होती है, तब तो हेतु और साध्य ये दो हो गये अत: द्वैत ही सिद्ध हुआ न कि अद्वैत। और यदि हेतु के बिना वचन मात्र से अद्वैत की सिद्धि होती है तब तो वा*मात्र से ही द्वैत की सिद्धि क्यें न हो जावे। भावाथर्- जब हेतु से अद्वैत को सिद्ध किया

जावेगा, तब अद्वैत साध्य की कोटि म्ें आ गया और हेतु तथा साध्य से द्वैत ही बन गया। अपने हाथ से ही अपने पैर पर कुल्हा।डी मार ली। सिद्ध करने चले थे अद्वैत को, सिद्ध हो गया द्वैत। यदि हेतु के बिना ही अद्वैत की सिद्धि कहो, तब तो अपने वचनमात्र से ही तो अद्वैत को मानोगे, फिर भला वचन मात्र से द्वैत भी क्यें न हो जावे ? अद्वैत के बिना द्वैत वैâसे ? अद्वैतं न विना द्वैता-दहेतुरिव हेतुना। संज्ञिनः प्रतिषेधो न, प्रतिषेध्याÂते क्वचित्।।२७।। द्वैत बिना अद्वैत न होगा, नञ् समास से बना सही। यथा हेतु के बिना अहेतू, हो सकता है कभी नहाR।। वस्तू का निषेध-प्रतिषेध, योग्य वस्तु बिन बने नहाR। है निषिद्ध 'आकाशकुसुम' फिर भी वह वृक्षें म्ें नित ही।।२७।।

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (३७) (३८) अन्वयाथर्- (द्वैतात् विना अद्वैतं न हेतुना अहेतुः इव) द्वैत के बिना अद्वैत नहाR हो सकता है जैसे कि हेतु के बिना अहेतु शब्द नहाR बन सकता (प्रतिषेध्यात् त्र+ते क्वचित् संज्ञिनः प्रतिषेधो न) क्योंकि निषेध करने योग्य वस्तु के बिना किसी भी नाम वाली वस्तु का निषेध नहाR किया जा सकता है। कारिकाथर्- जिस प्रकार से हेतु के बिना अहेतु सिद्ध नहाR है, उसी प्रकार से द्वैत के बिना अद्वैत भी नहाR बन सकता। क्योंकि प्रतिषेध्य-द्वैतादि के बिना अद्वैत™प का प्रतिषेध भी नहाR हो सकता है।। भावाथर्- द्वैत एक नाम सहित-संज्ञी शब्द है और उसका निषेध करने वाला अद्वैत शब्द है 'न द्वैतं-अद्वैतं' के अनुसार अद्वैत द्वैत के बिना नहाR बन सकता है। पृथक्त्वैकांत नहाR बनता पृथक्त्वैकान्तपक्षेÓपि, पृथक्त्वादपृथक्तु तौ। पृथक्त्वे न पृथक्त्वं स्यादनेकस्थौ ढ़सौ गुणः।।२८।। इस पृथक्त्वैकांत पक्ष म्ों, द्रव्य गुणें से पृथक्त्व गुण। अपृथक् है या पृथक् कहो यदि, अपृथक् है तब पक्ष अघट।। यदी कहो यह द्रव्य गुणें से, अलग पांडा तब सिद्ध नहाR। क्योंकि एक अनेकें म्ों यह, रहता अतः आfसिद्ध सही।।२८।। अन्वयाथर्- (पृथक्त्वैकांतपक्षेÓपि पृथक्त्वात् अपृथक्तु तौ) यदि प्रत्येक द्रव्य गुण आदि के पृथक्ता का ही एकांत माना जावे, तो पृथक् गुण से द्रव्यादि के भिVा होने से वे गुणगुणी अपृथव्â आfभिVा हो जाव्ोंगे (पृथक्त्वे पृथक्त्वं न स्यात् असौ गुणः हि अनेकस्थः) यदि वे गुण गुणी पृथक् ही हQ, तब तो पृथक् नाम का कोई गुण सिद्ध नहाR होगा, क्योंकि वह एक होते हुए भी अनेकें म्ों स्थित रहने वाला माना गया है। अतः उसके पृथक्त्व ™प म्ों कोई आfस्तत्व नहाR बनता है।। कारिकाथर्- पृथक्त्वैकांत पक्ष म्ों भी पृथक्त्वगुण से पदार्थों को भिVा मानने पर पृथक्-पृथक् ™प रहे हुए पदाथर् गुण और गुणी सब अपृथक्-आfभिVा हो जाय्ोंगे। एवं सभी को पृथक्त्व-भिVा-भिVा मानने पर पृथक्त्वगुण की सिद्धि नहाR हो सकेगी, क्योंकि यह पृथक्त्व गुण अनेक पदार्थों म्ों रहने वाला माना गया है।। बौद्ध की पृथक्त्व मान्यता म्ों दोष संतानः समुदायश्चा साधर्म्यर्ञ्च निरंकुशः। प्रेत्यभावश्चा तत्सवË न स्यादेकत्व-निन्हवे।।२९।। यदि एकत्व नहाR मानो, संतान™प अन्वय वैâसा? नहिं होवे समुदाय सÂशता, नहिं परलोक गमन होगा।। बाल-वृद्ध पयार्य अनेकें, नहाR घटWगी जो निबार्ध। क्षणिवैâकांत पक्ष म्ों क्षण-क्षण, म्ों होता है सब कुछ नाश।। २९।। अन्वयाथर्- (एकत्वनिन्हवे संतानः समुदायः च साधर्म्यË च प्रेत्यभावश्चा निरंकुशः) यदि एकत्व का सवर्था लोप किया जावे, तो संतान, समुदाय, सÂशता और परलोक गमन जो कि अंकुश रहित-अबाधित सिद्ध हQ (तत्सवË न स्यात्) वे सभी घटित नहाR हो सव्ोंâगे।। कारिकाथर्- एकत्व का सवर्था निÖव करने पर निरंकुश-सकल बाधक रहित अस्खलित™प से प्रमाण प्रसिद्ध संतान, समुदाय, साधर्म्यर्, परलोक तथा दिये हुए को लेना आदि ये सब व्यवहार सिद्ध नहाR हो सकते हQ। क्या ज्ञान ज्ञेय से सवर्था भिVा है सदात्मना च भिVां चेज्ज्ञानं ज्ञेयाद्

द्विधाप्यसत्। ज्ञानाÓभावे कथं ज्ञेयं बहिरन्तश्चा ते द्विषाम्।।३०।। ज्ञान यदी निज ज्ञेय वस्तु से, सत्स्व™प से भिV ा कहा। तब तो ज्ञान-ज्ञेय दोनें का, भी आfस्तत्व समाप्त हुआ।। प्रभो! ज्ञान के अभाव होने से बा¢ भ्यंतर सब ज्ञेय। वैâसे हेंगे सिद्ध! कहो फिर, तव मत विद्वेषी के मेय।।३०।। अन्वयाथर्- (चेत् सदात्मना च ज्ञानं ज्ञेयात् भिV ां द्विधा आfप असत्) यदि सत् ™प से भी ज्ञान ज्ञेय पदार्थों से भिV ा है, तब तो ज्ञान और ज्ञेय दोनें ही असत् हो जाव्ेंगे (ते द्विषां ज्ञानाÓभावे बहिरंतश्चा ज्ञेयं कथं) हे भगवन्! आपके विद्वेषी ए कांतवादियें के यहाँ ज्ञान के अभाव म्ें बहिरंग और अंतरंगभूत ज्ञेय पदाथर् वैâसे सिद्ध हो सव् âगे। कारिकाथर्- यदि सत्™प से भी ज्ञान ज्ञेय से भिV ा माना जाये, तब तो ज्ञान और ज्ञेय दोनें ही असत्™प हो जाय्ेंगे, क्येंकि हे भगवन्! आपके द्वेषी सवर्थैकांतवादियें के यहाँ ज्ञान के अभाव म्ें बहिस्तöव™प तथा अन्तस्तöव™प ज्ञेय पदार्थों की सिद्धि भी वैâसे हो सकेगी ? बौद्ध के यहाँ वचन किसको कहते हQ ? सामान्याथार् गिरोÓन्येषां, विशेषो नाÓभिलप्यते।

सामान्याभावतस्तेषां, मृषैव सकला गिर:।।३१।।

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (३९) (४०) बौद्धजनें के यहाँ वचन, सामान्य अथर् को ही कहते। है विशेष, वास्तविक स्वलक्षण, वचन उसे नहिं कह सकते।। बिन विशेष सामान्य कहाँ है, फिर सामान्य न होने से। सारे वचन व्यथर् अ® झूठे, ही हेंगे उनके मत से।।३१।। अन्वयाथर्- (अन्येषां गिर: सामान्याथार्: विशेषो न आिभलप्यते) आप बौद्धें के यहाँ वचन सामान्य अथर् को ही कहते हQ, विशेष अथर् को नहाR कहते हQ। (सामान्याÓभावत: तेषां सकला गिर: मृषा एव) विशेष के बिना सामान्य का भी अभाव हो जाने से आप बौद्धें के यहाँ सभी वचन मिथ्या ही ठहरते हQ। कारिकाथर्- आप बौद्धें के यहाँ वचन सामान्य अथर् को कहने वाले हQ, उन वचनें के द्वारा विशेष का कथन नहाR किया जा सकता है पुन: आपके यहाँ सामान्य का अभाव होने से सम्पूणर् वचन असत्य-मिथ्या ही हQ।। भावाथर्- प्रत्येक वस्तु के सामान्य-विशेष एेसे दो धमर् रहते हQ। यदि वचनें से सामान्य का ही कथन होवे, तब विशेष का कथन न हो सकने से विशेष का अभाव हो जाने से सामान्य नहाR रह सकेगा और सभी वचन असत्य अथर् को ही कहने वाले हो जाव्ेंगे। अद्वैत पृथक्त्व एकान्त म्ें दोष विरोधाVेभयैकात्म्यं, स्याद्वादन्यायविद्विषाम्। अवाच्यतैकान्तेÓप्युक्तिनार्वाच्यमिति युज्यते।।३२।। ये एकत्व पृथक्त्व उभय, आपस म्ें नित्य विरोधी हQ। स्याद्वाद विद्वेषी के ये, उभय तòव निरपेक्ष रहW।। यदि दोनें हQ 'अवाच्य' द्वैताद्वैत कथन नहिं हो युगपत्। तब निरपेक्ष अवाच्य यही वच, वैâसे होवेगा सुघटित?।।३२।। अन्वयाथर्- (स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्) स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियें के यहाँ अद्वैत और द्वैत का एकात्म्य भी नहाR बन सकेगा, क्येंकि इन दोनें का परस्पर म्ें विरोध पाया जाता है (आवाच्यतैकांते आिप अवाच्यं इति उक्ति: न युज्यते) एकांत से इन दोनें की अवाच्यता स्वीकार करने पर भी 'अवाच्य' यह वचन नहाR बोला जा सकता है। अथार्त् स्याद्वाद को न मानने से ये बाधाएं आती हQ। कारिकाथर्- स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वाले एकांतवादियें के यहाँ उभयैकात्म्य भी सिद्ध नहाR हो सकता है क्येंकि पृथक्त्वैकांत एवं अपृथक्त्वैकांत इन दोनें का परस्पर म्ें विरोध है। यदि आप कहW कि हम तòव को एकांत से अवाच्य मानते हQ, तब तो "अवाच्य" यह कथन भी नहाR बन सकेगा।। अद्वैत और पृथक्त्व सच्चे भी हQ अनपेक्ष्ये पृथक्त्वैक्ये, ¢वस्तु द्वय-हेतुत:। तदेवैक्यं पृथक्त्वं च, स्वभेदै: साधनं यथा।।३३।। यदि एकत्व पृथक्त्व परस्पर, म्ें निरपेक्ष रहW तब तो। हेतुद्वय से उभय न हेंगे, वस्तुभूत विंâचित् भी तो।। यदि अपृथक् पृथक्त्वापेक्षी, पृथक्-अपृथक् अपेक्षी है। तब तो वस्तुभूत आिवरोधी, भेदापेक्षि हेतुवत् हQ।।३३।। अन्वयाथर्- (अनपेक्ष्ये पृथक्त्वैक्ये हि अवस्तु द्वय हेतुत:) ये अद्वैत और पृथक्त्व एक-दूसरे की अपेक्षा न रखने से अवस्तु हQ क्येंकि दो हेतु पाये जाते हQ (तत् एव एेक्यं पृथक्त्वं च यथा स्वभेदै: साधनं) उसी प्रकार अद्वैत और पृथक्त्व ये दोनें एक-दूसरे की अपेक्षा रखने से वस्तुभूत हQ जैसे कि हेतु अपने

अन्वय व्यतिरेक भेदें से वास्तविक होता है।। कारिकाथर्- यदि पृथक्त्व और एकत्व ये दोनें धमर् परस्पर निरपेक्ष हQ तो वे अवस्तु™प हQ किन्तु दो प्रकार के हेतुआW से परस्पर सापेक्ष से ही पृथक्त्व और एकत्व धमर् वस्तुभूत हQ, जैसे पक्षधमर्त्व आदि अपने भेदें से निरपेक्ष हेतु अवस्तु™प है और वही हेतु अपने भेदें से सापेक्ष होकर वस्तु™प है। भावाथर्- जीवादि वस्तु कथंचित् अद्वैत ™प हQ क्येंकि सत् की अपेक्षा से सभी वस्तुआW म्ें एकत्व का अनुभव आ रहा है। उसी प्रकार से वे ही जीवादि वस्तु कथंचित् पृथक्त्व ™प हQ क्येंकि द्रव्य पयार्य आदि की अपेक्षा सबका पृथक्- पृथक् अनुभव आ रहा है। ये दो हेतु सभी वस्तु को उभय™प सिद्ध कर रहे हQ। सभी वस्तुएँ एकत्व और पृथक्त्व ™प वैâसे हQ ? सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं, पृथग्द्रव्यादिभेदत:। भेदाभेदविवक्षाया-मसाधारण-हेतुवत् ।।३४।। सत् सामान्य अपेक्षा जग म्ें, सभी वस्तुएँ एकस्व™प। द्रव्य तथा गुण-पयर्य से सब, वस्तु पृथक् हQ भेदस्व™प।। यथा असाधारण हेतू भी, भेदाभेद विवक्षा से। है अनेक अ® एक उसी विधि, सब कुछ एक अनेक रहW।।३४।।

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (४१) (४२) अन्वयाथर्- (सत्सामान्यात् तु सर्वैक्यं द्रव्यादिभेदत: पृथक्) सत् सामान्य की अपेक्षा से सभी वस्तु एकत्व ™प है एवं द्रव्य गुण आदि के भेद से सभी वस्तु भिV ा-भिV ा हQ। (भेदाभेदविवक्षायां असाधारण-हेतुवत्) जिस प्रकार असाधारण हेतु अभेद Âि॰ से एक और भेद Âि॰ से अनेक ™प हो जाता है, उसी प्रकार से सभी पदाथर् सत् ™प से अभेद विवक्षा करने पर एक ™प हQ एवं द्रव्य, गुण, पयार्ये के भेद की विवक्षा से भिV ा-भिV ा हQ।। कारिकाथर्- भेद और अभेद की विवक्षा म्ें असाधारण हेतु की तरह सत्सामान्य की अपेक्षा से सभी जीवादि वस्तुआW म्ें एकत्व है एवं द्रव्यादि के भेद की अपेक्षा पृथक्त्व भी है।। सत् म्ें ही विवक्षा और आ्विवक्षा होती है विवक्षा चाविवक्षा च, विशेष्येÓनन्तधमिर्णि। सतो विशेषणस्यात्र नाÓसतस्तैस्तदथिर्भि:।।३५।। अनंतधमार् वस्तू म्ें ही, घटे विवक्षा आ्विवक्षा। ये दोनें सत™प विशेषण, को कहताR न असत् इच्छा।। अर्थी करW विवक्षा तथा अनर्थी आ्विवक्षा करते। सत् वस्तू म्ें ही दोनें हQ, असत् वस्तु म्ें नहिं घटते।।३५।। अन्वयाथर्- (अत्र अनंतधमिर्णि विशेष्ये सत: विशेषणस्य विवक्षा च आ्विवक्षा च) इस अनंतधमार्त्मक विशेष्य-जीवादि पदार्थों म्ें सत् ™प विशेषण की ही विवक्षा और आ्विवक्षा (असत: न) असत् ™प विशेषण की नहाR की जाती है (तै: तदथिर्भि:) और ये विवक्षा-आ्विवक्षा उन-उन विशेषण के इच्छुक जनें द्वारा ही की जाती है।। कारिकाथर्- अनंतधमार्त्मक जीवादि पदाथर्™प विशेष्य म्ें एकत्वानेकत्व™प विशेषणें के इच्छुक विद्वानें द्वारा सत् स्व™प विशेषण की ही विवेक्षा और आ्विवक्षा की जाती है, असत् ™प विशेषण की नहाR की जाती है। भावाथर्- यदि कोई वस्तु के एकत्व को कहने की इच्छा करते हQ तो वे उस एकत्व की विवक्षा के इच्छुक कहलाते हQ, यदि एकत्व के कहने की इच्छा नहाR करते हQ, तब वे एकत्व की आ्विवक्षा के इच्छुक कहलाते हQ। वस्तु के एक धमर् को कहने की इच्छा म्ें उसी वस्तु का अन्य विरोधी गुण गौण हो जाता है। इसलिए उस गौण गुण की आ्विवक्षा हो जाती है। ये विवक्षा और आ्विवक्षा आ्स्ति™प पदार्थों म्ें ही होती है असत् ™प म्ें नहाR क्येंकि असत्भूत पदाथर् आकाश कुसुमवत् है ही नहाR, तब उसम्ें विवक्षा-आ्विवक्षा वैâसे बन सकेगी ? एक वस्तु म्ें भेद और अभेद दोनें वैâसे हेंगे ? प्रमाणगोचरौ सन्तौ, भेदाभेदौ न संवृती। तावेकत्राÓवि®द्धौ ते, गुणमुख्यविवक्षया।।३६।। सत्यज्ञान के गोचर होते, आ्स्ति™प हQ भेद-अभेद!। कल्पित™प नहाR है क्येंकि, ये प्रमाण के विषय जिनेश!।। एक वस्तु म्ें मुख्य गौण से, दोनें रहते आ्विरोधी। जिनकी जहाँ विवक्षा हो वह, मुख्य दूसरा गौण सही।।३६।। अन्वयाथर्- (भेदाÓभेदौ प्रमाणगोचरौ सन्तौ न संवृती) ये भेद और प्रमाण के विषय हQ और सत् ™प हQ, संवृति ™प नहाR हQ (ते गुणमुख्यविवक्षया तौ एकत्र आ्वि®द्धौ) हे भगवन्! आपके मत म्ें गौण और मुख्य की अपेक्षा से ये दोनें एक ही

वस्तु म्ें आविरोध ™प से रहते हQ। अथार्त् चार कारिका तक अद्वैत और पृथक्त्व का अनेकांत सिद्ध किया है। कारिकाथर्- ये दोनें भेद और अभेद प्रमाण के विषय होने से सत् ™प है- वास्तविक है, संवृति™प-काल्पनिक नहाR है। हे भगवन्! आपके शासन म्ें ये भेदाभेद एक ही जीवादि वस्तु म्ें गौण और मुख्य की विवक्षा से विरोध रहित हQ।। ।।इति द्वितीय: परिच्छेद:।। N : श्

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) द्वितीय परिच्छेद का सार अद्वैत-द्वैत एकांत का निराकरण और स्याद्वाद सिद्धि (कारिका २४ से ३६ तक) एक बÇ्ÿ्ाद्वैतवादी जनें का सम्प्रदाय है ये लोग कहते हQ कि ‘सवË वै खलु इदं बÇ्ÿ्ा नेह नानास्ति कश्चान’। यह सारा जगत् एक बÇ्ÿ्ा स्व™प है, यहाँ भिV्ा वस्तुएँ कुछ नहाR हQ। ये चेतन-अचेतन जितने भी पदाथर् दिख रहे हQ वे सब एक बÇ्ÿ्ा की ही पयार्य हQ। ए्से ही शब्दाद्वैतवादी सारे जगत को एक शब्द बÇ्ÿ्ा स्व™प ही मानते हQ। विज्ञानाद्वैतवादी सारे जगत को एक ज्ञान मात्र ही मानते हQ, चित्राद्वैतवादी सारे जगत को चित्रज्ञान ™प कहते हQ और शून्याद्वैतवादी सब कुछ शून्य ™प ही मानते हQ। ए्से ये पाँच अद्वैतवादी हQ, ये लोग एक अद्वैत के सिवाय द्वैत™प (दो ™प) कोई चीज नहाR मानते हQ, इनका कहना है कि जो भी द्वैत™प संसार दिख रहा है वह सब आfवद्या या कल्पना से ही है, वास्तविक नहाR है। इस पर जैनाचार्यों का कहना है कि पुण्य-पाप, बंध-मोक्ष, सुख-दु:ख, विद्या-आfवद्या आदि ™प से सवर्त्र दो चीज्ें ही उपलब्ध होती हQ। इसम्ें एक को काल्पनिक कहने पर दूसरी भी काल्पनिक होने से कोई व्यवस्था नहाR बन सकती तथा आपने आगम से बÇ्ÿ्ा तòव को सिद्ध किया, तो आगम और बÇ्ÿ्ा दो हो गये। यदि आगम को बÇ्ÿ्ाा का स्वभाव कहो तो भी स्वभाव और स्वभाव वाले की अपेक्षा दो हो गये। दूसरी बात यह है कि जैसे-जैन के बिना अजैन नहाR बनता, वैसे ही द्वैत के बिना अद्वैत की सिद्धि नहाR होती है तथा जिस आfवद्या से ये भेद दिख रहे हQ वह आfवद्या परमबÇ्ÿ्ा से भिV्ा है या आfभV्ा ? यदि भिV्ा कहो तो द्वैत हो गया और यदि आfभV्ा कहो तो तुम्हारा बÇ्ÿ्ा आfवद्या से आfभV्ा होने से आfवद्या ™प हो गया, इसलिए आपका बÇ्ÿ्ा आfवद्या™प हो जाने से हमारा विद्या™प द्वैत तòव ही सिद्ध हो गया। यौग के दो भेद हQ- नैयायिक और वैशेषिक। ये लोग द्रव्य से गुण को सवर्था भिV्ा मानते हQ। उनके मत से आfग्न से उष्णता सवर्था भिV्ा है किन्तु जैनाचायर् पूंछते हQ कि उष्णता के संबंध के पहले आfग्न उष्ण थी या ठंडी ? यदि उष्ण थी, तो उष्णता के संबंध ने क्या किया, यदि आfग्न ठंडी थी और उष्णता ने उष्ण किया, तो वह पूवर् म्ें उष्ण गुण और ठंडी आfग्न उपलब्ध नहाR होते हQ। वास्तव म्ें उष्णता के बिना आfग्न का आfस्तत्व ही असंभव है इसलिए जैन मत म्ें द्रव्य से गुण को आfभV्ा माना है और संज्ञा आदि के भेद से ही भिV्ा माना है। बौद्ध ने कायर्-कारण को परस्पर म्ें सवर्था भिV्ा माना है, उसका कहना है कि मिò्ी का सवर्था नाश होकर घ्ांडा बना है परन्तु यह बात किसी के गले नहाR उतरती है तथा इन्हेंने कायर् (घ्ांडे) के अणु-अणु को भी सवर्था भिV्ा-भिV्ा माना है किन्तु ए्सा मानने से तो घ्ांडे म्ें पानी वैâसे भरा जा सकेगा ? आfभप्राय यह हुआ कि बÇ्ÿ्ाद्वैतवादी चेतन, अचेतन, संसारी, मुक्त कायर् कारण आदि सभी म्ें अद्वैत-एक™पता सिद्ध करते हQ। योग और सभी द्रव्य गुण

आदि म्ें और कायर् कारण आदि म्ें द्वैत यानी पृथक्-पृथक्पना सिद्ध करते हQ। मीमांसक सवर्था अद्वैत और पृथक् ™प उभय का एकान्त मानता है। बौद्ध भेदाभेद को सवर्था अवाच्य-अवक्तव्य कहते हQ। इन चारें की मान्यताएं कथमपि संभव नहाR हQ। जैनसिद्धान्त के अनुसार सभी चेतन-अचेतन वस्तु ™प जगत अद्वैत एक ™प है, क्येंकि सभी वस्तुएँ सत् सामान्य की अपेक्षा आिस्त™प हQ। सभी वस्तुएँ पृथक्त्व™प हQ क्येंकि संज्ञा संख्या, लक्षण आदि से सभी म्ें भेद हQ। सभी वस्तुएँ उभय™प हQ क्येंकि ›âम से अद्वैत और भेद™प द्वैत की अपेक्षा है। सभी वस्तुएँ अवक्तव्य हQ क्येंकि एक साथ अद्वैत और द्वैत दोनें धमर् को कह नहाR सकते। सभी वस्तुएँ अद्वैत अवक्तव्य ™प हQ क्येंकि ›âम से अद्वैत की और युगपत् उभय की विवक्षा है। सभी वस्तुएँ द्वैत अवक्तव्य हQ क्येंकि ›âम से द्वैत की और युगपत् दोनें धर्मों की विवक्षा है। इस प्रकार सभी वस्तुएँ कथंचित् भेदाभेदात्मक होकर ही प्रमाण का विषय हQ क्येंकि मुख्य और गौण की विवक्षा पाई जाती है। जब वस्तुआW म्ें अभेद धमर् विवक्षित होता है, तब वह प्रधान हो जाता है और द्वैत धमर् गौण हो जाता है। जब द्वैत प्रधान होता है, तब अद्वैत गौण हो जाता है, यही स्याद्वाद प्रि›âया है। N : श् (४३) (४४)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (४५) (४६) अथ तृतीय: परिच्छेद: वस्तु को सवर्था नित्य मानने म्ें दोष नित्यत्वैकान्तपक्षेÓपि, र्विा›ियâया नोपपद्यते। प्रागेव कारकाभाव:, क्व प्रमाणं क्व तत्फलम्।।३७।। यदि सवर्था सभी वस्तु हQ, नित्य कहो तब क्या होगा? हलन, चलन परिणमन™प, र्विा›ियâया कायर् वैâसे होगा।। कत्तार्दि कारक के पहले, ही अभाव होगा निश्चित। ज्ञाता बिन फिर ज्ञान कहाँ, अ® कहाँ ज्ञान का फल सुघटित ?।।३७।। अन्वयाथर्- (नित्यत्वैकांतपक्षे आfप र्विा›ियâया न उपपद्यते) यदि सवर्था सभी वस्तुआW को नित्य ही माना जाये, तब तो कुछ भी ि›ियâया आदि परिवतर्न नहाR हेंगे (प्रागेव कारकाभाव: क्व प्रमाणं क्व तत्फलं) क्येंकि नित्य म्ें पहले ही कत्तार्-कमर् आदि कारकें का अभाव है पुन: प्रमाण कहाँ रहेगा और जब प्रमाण नहाR होगा, तब उसका फल भी कहाँ रहेगा ? कारिकाथर्- नित्यत्वैकांत पक्ष म्ें भी परिणमन स्व™प एवं परिस्पंद™प विविध ि›ियâयाएँ नहाR हो सकती हQ क्येंकि कायर् की उत्पत्ति के पहले से ही कारक का अभाव है एवं कारक के अभाव म्ें प्रमाण भी कहाँ रहेगा ? और उसका फल भी कहाँ रहेगा ? भावाथर्- जब सभी जीवादि पदाथर् सवर्था नित्य हQ, तब उनम्ें किसी भी प्रकार का परिणमन, एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त करना आदि नहाR बन सकता है। कथंचित् आfनत्य मानने से ही जीव का जन्म, मरण, बचपन से युवावस्था आदि परिवतर्न घटित नहाR हेंगे, सवर्था म्ें नहाR बन्ेंगे। प्रमाण और कारकें के नित्य होने म्ें र्विा›ियâया वैâसी ? प्रमाणकारवैâव्यर्त्तंâ, व्यत्तंâ चेदिन्द्रियाथर्वत्। ते च नित्ये विकायËं विंâ, साधोस्ते शासनाद्बहि:।।३८।। इन्द्रिय द्वारा विषयें की है, आfभव्यक्ति जैसे वैसे। कारक और प्रमाणें द्वारा, वे अव्यक्त प्रगट होते।। ये प्रमाण कारक दोनें ही, नित्य सवर्था सांख्य कहW। भगवन्! तव शासन से बाहर, विधि ि›ियâया भी हो वैâसे?।।३८।। अन्वयाथर्- (इन्द्रियाथर्वत् प्रमाणकारवैâ: व्यत्तंâ व्यत्तंâ चेत्) जिस प्रकार से इन्द्रियाँ अपने विषय को व्यक्त करती हQ, उसी प्रकार से यदि प्रमाण और कारकें के द्वारा व्यक्त को आfभव्यक्त-प्रकट किया जाता है, तब तो (ते च नित्ये ते साधो: शासनाद्बहि: विंâ विकायËं) आपके यहाँ वे प्रमाण और कारक सवर्था नित्य हQ अत: हे साधो! आपके शासन से बहिर्भूत जनें के यहाँ व्यक्त को प्रकट करने ™प से भी र्विा›ियâया वैâसे बन सकेगी ? कारिकाथर्- जिस प्रकार इन्द्रियें के द्वारा अथर् अपने-अपने विषय के पदाथर् आfभव्यक्त किये जाते हQ, उसी प्रकार प्रमाण और कारकें के द्वारा व्यक्त- महान, अहंकार आदि तòव आfभव्यक्त किये जाते हQ। इस प्रकार से यदि सांख्य कहW तो उचित नहाR है। उनके यहाँ प्रमाण और कारक तो सवर्था नित्य हQ, इसलिए हे भगवन्! आपके शासन से बहिर्भूत उन सांख्यें के यहाँ विकायर्-आfभव्यक्ति या अवस्था परिणमन वैâसे हो सकता है ? अथार्त् किसी भी प्रकार का आfभव्यक्ति- ™प भी परिणमन नहाR हो सकता है। सवर्था सत् ™प कायर् उत्पVा वैâसे होगा ? यदि सत्सवर्था

कायË पुंवV◌ोत्पत्तुमर्हति। परिणाम-प्रक्ėप्तिश्चा, नित्यत्वैकान्त-बाधिनी।।३९।। विद्यमान यदि कायर् हमेशा, कारण क्यें माना जावे। उत्पत्ती के योग्य न आत्मा, वैसे ही घट मत होवे।। मिó◌ी म◌्◌ें घट सदा उपस्थित, च›◌ा, दण्ड फिर क्या करते ?। यदि परिणमन व्यवस्था है फिर, नित्यपक्ष बाधित उससे।।३९।। अन्वयाथर्- (यदि कायË सवर्था सत् पुंवत् उत्पत्तुं न अर्हति) यदि कायर् को सवर्था विद्यमान ™प ही माना जाये, तो पु®ष के समान उत्पन नहाR हो सकता है (परिणामप्रक्ėप्ति: च नित्यत्वैकांतबाधिनी) क्येंकि जो वस्तु म◌्◌ें परिणमन- परिवतर्न की कल्पना है वह सवर्था नित्यत्व एकांत को बाधित करने वाली है। कारिकाथर्- यदि कायर् को सवर्था सत् ™प माना जाये, तब तो पु®ष के समान वह उत्पV◌ा ही नहाR हो सकता है और यदि परिणमन की कल्पना करW, तब तो नित्यत्वैकांत म◌्◌ें बाधा आ जाती है। भावाथर्- सांख्य कायर् को सवर्था विद्यमान ™प ही मानता है उसका कहना है कि मिó◌ी म◌्◌ें घोडा, बीज म◌्◌ें अंकुरे सदा ही विद्यमान हQ च›◌â, वुंâभकार एवं किसान मिó◌ी, जल आदि कारण सामग्री केवल कायर् को प्रकट कर देती हQ◌ं। वे

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (४७) (४८) कारण कलाप कायर् को उत्पVा नहाR करते हQ। इस पर जैनाचार्यों का कहना है कि यह कल्पना ठीक नहाR है। हेतु के दो भेद हQ-कारक हेतु और ज्ञापक हेतु। मिóी से घट बनाने म्ें वुंâभकार, च›â, दण्ड आदि कारक हेतु हQ और कमरे म्ें घट-पट आदि वस्तुएँ रखी हQ अंधेरा होने से दिखती नहाR है। तब दीपक आदि से उन्हW प्रकट कर देना, देख लेना होता है अत: दीपक आदि ज्ञापक हेतु हQ। संसार के बहुत से कायर् कारक हेतु से ही बनते हQ। यदि एेसा न माने तो पदार्थों म्ें जो परिवतर्न देखा जाता है, वह वैâसे बनेगा क्येंकि परिवतर्न होने से सवर्था नित्य एकांत की व्यवस्था नहाR है। नित्य एकांत म्ें पुण्य पापादि भी असंभव हQ पुण्य-पापि›âया न स्यात्, प्रेत्यभाव: फलं कुत:। बन्ध-मोक्षौ च तेषां न, येषां त्वं नाÓसि नायक:।।४०।। नित्यैकांत पक्ष म्ें शुभ अ® अशुभ ›âया भी नहिं होवे। नहिं होगा परलोकगमन फिर, सुख-दु:ख फल वैâसे होवे।। कमर्बंध अ® मोक्ष व्यवस्था, भी उनके मत म्ें नहिं है। हे भगवन्! जिनके तुम स्वामी, नहाR उन्हW सब दुघर्ट है।।४०।। अन्वयाथर्- (येषां त्वं नायक: न आfस) हे भगवन्! जिनके आप स्वामी नहाR हQ (तेषां पुण्यपापि›âया न स्यात्) उनके यहाँ पुण्य और पाप ›âयाएँ नहाR हो सकती हQ (प्रेत्यभावं फलं कुत: बंधमोक्षौ च न) पुण्य पाप के फलस्व™प परलो कगमन भी वैâसे होगा? पुन: बंध और मोक्ष की व्यवस्था भी नहाR बन सकेगी। कारिकाथर्- सवर्था नित्य पक्ष म्ें पुण्य, पाप™प ›âया नहाR हो सकती है। उसके अभाव म्ें परलोक एवं सुख-दु:खादि फल भी वैâसे हो सकते हQ ? हे भगवन ! जिनके आप नायक-स्वामी नहाR हQ उनके यहाँ बंध और मोक्ष भी नहाR हो सकते हQ। क्षणिक एकांत भी असंभव है क्षणिवैâकान्तपक्षेÓपि, प्रेत्यभावाद्यसंभव:। प्रत्यभिज्ञाद्यभावाVा, कायार्रम्भ: कुत: फलम्।।४१।। क्षणिवैâकांत पक्ष म्ें भी, परलोकगमन वैâसे होगा?। बंध-मोक्ष प्रि›âया असंभव, है फिर धमर् कहाँ होगा?।। क्येंकि प्रत्यभिज्ञान असंभव, है स्मृति अनुमान कहाँ?। पुन: कायर् आरंभ न होगा, फल भी उसका रहा कहाँ?।।४१।। अन्वयाथर्- (क्षणिवैâकांत पक्षेÓपि प्रेत्यभावाद्य संभव:) यदि वस्तु को सवर्था क्षणिक ™प ही माना जाये, तो भी परलोक गमन आदि असंभव ठहरते हQ (प्रत्यभिज्ञाद्यभावात् कायार्रंभ: न फलं कुत:) और प्रत्यभिज्ञान, स्मरण, अनुमान आदि ज्ञानें का अभाव हो जाने से कायर् का आरंभ भी नहाR हो सकेगा पुन: कायर् के अभाव म्ें सुख-दु:खादि फल भी वैâसे बन सव्ेंâगे ? कारिकाथर्- क्षणिवैâकांत पक्ष म्ें भी प्रेत्यभाव आदि असंभव हQ, क्येंकि प्रत्यभिज्ञान आदि का अभाव होने से कायार्दि का आरंभ नहाR हो सकता है पुन: फल वैâसे हो सकेगा ? भावाथर्-प्रत्येक वस्तु को यदि सवर्था क्षण-क्षण म्ें न° होने वाली मान लिया जावे, तब तो आत्मा का आfस्तत्व कुछ काल के लिए भी नहाR रह सकता है। पुन: पुण्य-पाप, बंध-मोक्ष, परलोक-गमन आदि किसको हेंगे और स्मरण,

प्रत्यभिज्ञान, अनुमान आदि के न होने से कोई भी व्यक्ति कुछ भी कायर् वैâसे कर सकेगा एवं उसका फल सुख-दु:ख भी वैâसे भोगेगा? अथार्त् क्षणिवैâकांत म्ें भी कुछ भी व्यवस्था नहाR बन सकती है। कायर् सवर्था असत् से वैâसे होगा ? यद्यसत्सवर्था कायË, तन्माजनि ख-पुष्पवत्। मोपादान-नियामोÓभून्माÓÓÕास: कायर्-जन्मनि।।४२।। यदि कायर् सवर्था असत् है, गगन कुसुमवत् नाEह होगा। यदि असत् की हो उत्पत्ती, उपादान फिर क्या होगा? जौ बीजें से जौ ही हें, यह उपादान कारण निष्फल। पुन: कायर् के उत्पादन म्ें, सब विÕास रहा असफल।।४२।। अन्वयाथर्- (यदि सवर्था कायË असत् तत् खपुष्पवत् मा जनि) यदि कायर् को सवर्था असत् ही माना जावे, तब तो वह कायर् आकाश पुष्पवत् उत्पVा मत होवे (उपादाननियामो मा भूत् कायर्जन्मनि आÕास: मा) असत् के उत्पाद म्ें तो कायर् के उपादान का नियम भी नहाR बन सकता एवं कायर् की उत्पत्ति म्ें कुछ भी विÕास नहाR रहेगा। कारिकाथर्- यदि कायर् को सवर्था असत्™प ही मान्ें, तब तो आकाश पुष्प के समान वह कभी उत्पVा ही नहाR हो सकेगा एवं उसके उपादान कारण का नियम भी नहाR बन सकेगा तथा उसके अभाव म्ें कायर् की उत्पत्ति का कोई विÕास भी

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (४९) (५०) नहाR हो सकेगा। भावाथर्- बौद्धें का कहना पूर्वोक्त सांख्य से सवर्था उल्टा ही रहता है। सांख्य ने कहा था कि मिó्ी म्ें घट सदा विद्यमान ही रहता है और बौद्ध कहता है कि मिó्ी के पिंड का सवर्था नाश हो जाने के बाद घांेडा उत्पV्ा होता है अत: घट कायर् सवर्था आfविद्यमान से ही बना है। इस पर जैनाचायर् कहते हQ कि तब तो जैसे आकाश के पूâल नहाR हQ वैसे ही कारण के नहाR रहने से वे कायर् भी नहाR हेंगे। यदि जबरदस्ती मान भी लेवोगे तो भी उस कायर् की उत्पत्ति म्ें उपादान कारण का कुछ भी नियम नहाR रहेगा। कारण दो प्रकार के होते हQ एक निमित्तकारण, दूसरा उपादान कारण। घट के बनने म्ें मिó्ी उपादान कारण है, वही घट™प परिणत हो जाती है। दण्ड, चाक, वुंâभार आदि निमित्त कारण हQ ये छूट जाते हQ। यदि उपादान कारण का सवर्था विनाश करके घांेडा बना है, तब तो तन्तु से या बीज से भी घांेडा बन जावे, मिó्ी से घट, तंतु से वŒा और बीज से अंकुर ए्ोसा नियम नहाR बन सकेगा तथा कायर् की उत्पत्ति म्ें भी विÕ्ाास न रहने से कृषक गेहूँ के बीज को बोकर गेहूँ की उत्पत्ति म्ें विÕ्ाास नहाR कर पावेगा। क्षणिक एकांत म्ें कायर्कारण भाव असंभव है न हेतु-फल-भावादि-रन्यभावादनन्वयात्। सन्तानान्तरवV्ौक:, सन्तानस्तद्वत: पृथक्।।४३।। हेतुभाव फलभाव न हेंगे, क्येंकि न अन्वय हQ उनम्ें। भिV्ा-भिV्ा संतान सÂश, है अन्यभाव पूर्वोत्तर म्ें।। पूर्वोत्तर क्षण मेW इक ही, संतान कहो तो ठीक नहाR। क्येंकि निज वस्तू से इक, संतान पृथक् है कभी नहाR।।४३।। अन्वयाथर्- (हेतुफलभावादि: न अन्यभावात् सन्तानान्तरवत् अनन्वयात्) सवर्था क्षणिक एकांत म्ें कायर् कारण भाव आदि नहाR बन सकते हQ क्येंकि वे परस्पर म्ें भिV्ा होते हQ उनम्ें भिV्ा सन्तान के समान अन्वय नहाR पाया जाता है (एक: संतान: तद्वत: पृथक् न) जो एक संतान होता है, वह संतानी से भिV्ा नहाR होता है। कारिकाथर्- इस क्षणिक एकांत पक्ष म्ें भिV्ा संतान के समान कारण- कायर्भाव आदि कुछ भी नहाR हो सकते हQ, क्येंकि इनम्ें अन्वय के न होने से भिV्ापना है। संतानी से पृथक् कोई एक संतान नहाR है। भावाथर्- बौद्धो के यहाँ मृत्पिंड और घट म्ें कारण कायर् भाव नहाR बनता है क्येंकि उनके यहाँ दोनें ही भिV्ा हQ। दोनें म्ें अन्वय ™प द्रव्य एक नहाR है। हम जैनें ने तो मृत्पिंड और घट दोनें म्ें अन्वय ™प द्रव्य एक माना है ये लोग नहाR मानते हQ। अतएव जैसे देवदत्त और जिनदत्त भिV्ा-भिV्ा हQ, उनम्ें अन्वय भाव नहाR है। वैसे ही देवदत्त की बाल्यावस्था, युवावस्था ™प पयार्य्ें भी भिV्ा ही हQ क्येंकि इन पयार्यें म्ें भी बौद्ध अन्वय ™प एक आत्मा नहाR मानता है। अत: संतानी से भिV्ा एक संतान परमाथर्भूत कोई वस्तु नहाR है। बौद्ध भिV्ा-भिV्ा कायर्क्षणें म्ें एकत्व को संवृति से मानता है अन्येष्वनन्यशब्दोÓयं, संवृत्तिनर् मृषा कथम्। मुख्याथर्: संवृत्तिनर् स्याद्, विना मुख्याV्ा संवृति:।।

४४।। भिV्ा चित्तक्षण म्ें जो है, संतान™प से इक आत्मा। यह संवृति से कथन यदि तव, संवृति क्यें नहिं हो मिथ्या।। यदि संतति को मुख्य कहो तो, मुख्य अथर् संवृत्ति नहिं है। यदि संवृति है पुन: मुख्य के, बिन संवृत्ति नहाR घटती है।। ४४।। अन्वयाथर्- (अन्येषु अनन्यशब्द: अयं संवृति: मृषा कथं न) यदि कहा जाये कि भिV्ा-भिV्ा चित्तक्षणें म्ें जो आfभV्ा एक आत्मा कहा जाता है, वह संवृति से कहा जाता है तब यह संवृति काल्पनिक होने से मिथ्या क्यें नहाR है। (मुख्याथर्: संवृति: न स्यात्) क्येंकि संवृति मुख्य अथर् को कहने वाली नहाR है (मुख्यात् बिना संवृति: न) और मुख्य अथर् के बिना संवृति हो नहाR सकती है। कारिकाथर्- अन्य भिV्ा-भिV्ा क्षणें म्ें अनन्य-ये क्षण आfभV्ा है ए्ेसा कहना यह संवृति है तो यह असत्य क्यें नहाR होगी ? क्येंकि संवृत्ति मुख्य अथर् को नहाR कह सकती है और मुख्य के बिना भी संवृति हो नहाR सकती है। भावाथर्- कायर्-कारण आदि भिV्ा-भिV्ा लक्षणें म्ें जो एकता का व्यवहार है, वह संवृति से कहा जाता है और बौद्धें की यह संवृति काल्पनिक है ए्ेसा स्वयं उन्हेंने ही संवृति का लक्षण किया है, तब यह संवृति मुख्य अथर् को कहने वाली न होने से असत्य अथर् को ही कहती है और यह नियम है कि मुख्य अथर् के बिना काल्पनिक अथर् भी असंभव है, जैसे आfग्न पदाथर् मुख्य है तभी ›âोधी बालक म्ें आfग्न की कल्पना की जाती है अन्यथा नहाR।

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (५१) (५२) बौद्ध के यहाँ चतुष्कोटि विकल्प अवक्तव्य है चतुष्कोटेविर्कल्पस्य, सवार्न्तेषूक्त्ययोगत:। तòवाÓन्यत्वमवाच्यं चेत्तयो: संतानतद्वतो:।।४५।। सब धर्मों म्ें चार कोटि से, भेद कहे नहिं जा सकते। सत् या असत् उभय-अनुभय, इन चारें म्ें ही दोष दिखे।। इसीलिए संतान और संतानी तòव 'अवाच्य' कहे। क्येंकि ये दोनें हि एक या, भिV्ा नहाR यह बौद्ध कहW।। अन्वयाथर्- (चेत् सवार्न्तेषु चतुष्कोटे: विकल्पस्य उक्त्ययोगत:) यदि यह कहा जाये कि सभी धर्मों म्ें चतुष्कोटि विकल्प के कहने का अभाव है (तयो: संतानतद्वतो: तòवान्यत्वं अवाच्यं) अत: उन संतान और संतान का भी तòव- एकत्वधमर् और अन्यत्वधमर् अवाच्य ठहरता है। बौद्ध के कथन का आचायर् आगे की कारिका द्वारा उत्तर दे रहे हQ। कारिकाथर्- सवाËत-समस्त धर्मों म्ें चार कोटि ™प विकल्प के कहने का अभाव होने से उन संतान और संतानी के तòव- एकत्व और अन्यत्व-अनेकत्व धमर् अवाच्य हQ यदि बौद्ध ए्ोसा कहते है, तब तो आचायर् उसका स्पº्करण करते हुए आगे कारिका म्ें कहWगे। एकांत से अवक्तव्य मान्यता म्ें दोष अवक्तव्यचतुष्कोटि-विकल्पोÓपि न कथ्यताम्। असवार्न्तमवस्तु स्या-दविशेष्य-विशेषणम्।।४६।। तब तो चतुष्कोटि का विकल्प, अवक्तव्य है इस विध भी। नहाR कथन हो सकता फिर सब, वस्तु विकल्पातीत हुई।। सब धर्मों से विरहित वस्तू, सदा अवस्तू™प हुई। चूँकि विशेष्य-विशेषण भी, उसम्ें हो सकता कभी नहाR।।४६।। अन्वयाथर्- (अवक्तव्यचतुष्कोटिविकल्प: आfप न कथ्यताम्) तब तो चार कोटि का विकल्प 'अवक्तव्य' है, यह भी नहाR कहना चाहिए (असवाËतं अवस्तु आfवशेष्यविशेषणं स्यात्) क्येंकि जो वस्तु सभी धर्मों से रहित है वह अवस्तु है और उसम्ें विशेषण-विशेष्य भाव भी नहाR बन सकता है। कारिकाथर्- "चतुष्कोटि विकल्प अवक्तव्य है" ए्ोसा भी नहाR कहा जा सकेगा, पुन: वे जीवादि पदाथर् असवाËत-सभी धर्मों से रहित होते हुए अवस्तु™प ही हो जाय्ेंगे। असत् का निषेध होता है क्या ? द्रव्याद्यन्तरभावेन, निषेध: संज्ञिन: सत:। असद्भेदो न भावस्तु, स्थानं विधि-निषेधयो:।।४७।। संज्ञी स्वद्रव्यादि चतु७्य, से सत्™प प्रसिद्ध रहे। उसका परद्रव्यादि चतु७्य, से ही सदा निषेध कहW।। असत्™प का निषेध वैâसे, हो सकता है कहो सही। चूँकि सवर्था असत् पदारथ, विधि-निषेध का विषय नहाR।। ४७।। अन्वयाथर्- (संज्ञिन: सत: द्रव्याद्यंतर भावेन निषेध:) जो संज्ञी और सत् है उसी का परद्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से निषेध किया जाता है (असद्भेदो भावस्तु विधिनिषेधयो: स्थानं न) क्येंकि असत् ™प पदाथर् विधि और निषेध का स्थान नहाR हो सकता है। अथार्त् जो वस्तु आfस्त ™प है, उसी म्ें आfस्त-नास्ति धमर् की कल्पना शक्य है, जो वस्तु है ही नहाR उसम्ें नास्ति आदि धमर् वैâसे रहWगे। यदि कहो आकाश का पुष्प नहाR है अत: उसम्ें 'नास्ति' शब्द का व्यवहार होता है, तो बात भी ठीक नहाR है क्येंकि स्वयं स्वामीजी ने अन्यत्र भी कहा है कि 'खे नास्ति पुष्पं त®षु प्रसिद्धं' आकाश

म्ें पुष्प नाम की चीज है, अतएव उनका निषेध किया जाता है। कारिकाथर्- सत्™प संज्ञी पदाथर् का ही द्रव्यांतर आदि की अपेक्षा से निषेध किया जाता है। क्येंकि असत् ™प वस्तु विधि -निषेध का स्थान ही नहाR हो सकती है।

अवस्तु ही अवक्तव्य है अवस्त्वनभिलाप्यं स्यात्सवार्न्तै: परिवजिर्तम्। वस्त्वेवावस्तुतां याति, प्रि›ूâयाया विपयर्यात्।।४८।। सब धर्मों से रहित वस्तु म्ें, सदा अवस्तू ही हेंगी। वे तो 'अवक्तव्य' कोटि म्ें, वाच्य वचन से नहिं हेंगी।। वस्तू ही प्रि›ूâया पलटने, से अवस्तु बन जाती है। परद्रव्यादि चतु॰य से ही, वस्तु अवस्तु कहाती है।। ४८।। अन्वयाथर्- (सवार्न्तै: परिवजिर्तं अवस्तु अनभिलाप्यं स्यात्) जो सभी धर्मों से रहित है वही अवस्तु है और वही अवक्तव्य है (प्रि›ूâयाया विपयर्यात् वस्तु एव अवस्तुतां याति) क्येंकि प्रि›ूâया के पलट देने से वस्तु ही अवस्तुपने को प्राप्त हो जाती है।

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (५३) (५४) कारिकाथर्- जो समस्त धर्मों से रहित है वह अवस्तु है और वही अवाच्य है। क्येंकि प्रि›ि्रया के विपयर्य से-स्व™पादि से विपरीत पर™पादि से वस्तु ही अवस्तु ™प हो जाती है। भावाथर्- जब वस्तु म्ें परद्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव चतुष्य की अपेक्षा करते हQ, तभी वह वस्तु कथंचित् अवस्तु कहलाती है न कि सभी धर्मों से रहित अवस्तु। सभी धर्मों से रहित को कहा नहाR जा सकता सवान्र्ताश्चोदवक्तव्यास्तेषां विंâ वचनं पुन:। संवृत्तिश्चोन्मृषैवेषा परमाथर्-विपयर्यात्।।४९।। यदि सब धमर् अवाच्य रहWगे, पुन: कथन उनका वैâसे? धमर्देशना, स्वपर पक्ष, साधन दूषण वाणी वैâसे? यदी वचन संवृती™प, फिर मिथ्या ही वे सिद्ध हुए। इन परमाथर् वि®द्ध वचन से, नहिं सत्याथर् बोध होवे।।४९।। अन्वयाथर्- (चेत् सवाËता अवक्तव्या: पुन: तेषां वचनं िEक) यदि सभी धमर् अवक्तव्य हQ, तब तो उनका धमर् देशना आदि कथन भी वैâसे होगा ? (संवृति: चेत् परमाथर्विपयर्यात् एषा मृषा एव) यदि कहो कि अवक्तव्य का कथन संवृति ™प है, तब तो यह संवृति परमाथर् से विपरीत होने से असत्य ही है। कारिकाथर्- यदि सभी धमर् अवक्तव्य ही हQ पुन: आपके यहाँ उनका कथन भी वैâसे हो सकेगा ? और यदि आप कहW कि उनका कथन संवृति ™प है तब तो परमाथर् से विपरीत होने से यह संवृति तो असत्य ही है। आप बौद्ध वस्तु को अवाच्य क्येंं मानते हो ? अशक्यत्वादवाच्यं किमभावात्किमबोधत:। आद्यन्तोक्ति-द्वयं न स्यातEक व्याजेनोच्यतां स्पुâटम्।।५०।। कहो बौद्ध जी! तŸव आपका, ‘अवक्तव्य’ किस विध से है?। क्या अशक्ति से या अभाव से या अबोध से नहिं कहते।। इन तीनें म्ें आदि-अंत के, कारण शक्य नहाR दिखते। अत: बहाना करने से क्या, साफ कहो कि अभाव है।।५०।। अन्वयाथर्- (विंâ अशक्यत्वात् अवाच्यं अभावात् विंâ अबोधत:) क्या वस्तु का कहना शक्य न होने से वह अवाच्य है अथवा उसका अभाव है या उसका ज्ञान नहाR है ? (अद्यान्तोक्तिद्वयं न स्यात् व्याजेन विंâ स्पुâटं उच्यताम्) इन तीनें प्रश्नें म्ें से आदि के और अंत के हेतु तो हो नहाR सकते हQ अत: बहानेबाजी से क्या ? स्प° कहिए कि वस्तु का अभाव है। कारिकाथर्- आप बौद्धें के यहाँ तत्व अवाच्य क्यें है ? क्या अशक्य होने से अवाच्य है या उसका अभाव होने से अवाच्य है अथवा उसका ज्ञान न होने से अवाच्य है ? इनम्ें से आदि और अन्त ™प दो पक्ष तो बन नहाR सकते। इसलिए बहानेबाजी से क्या ? स्प° कहिए कि तŸव का अभाव है। सवर्था क्षणिक म्ें कृतनाश आदि दोष आते हQ हिनस्त्यनभिसंधातृ, न हिनस्त्यभिसंधिमत्। बध्यते तद्द्वयापेतं, चित्तं बद्धं न मुच्यते।।५१।। हिंसा के आfभप्राय रहित, हिंसा करता कोई निश्चित। िEहसा के आfभप्राय सहित, नहिं हिंसा कर सकता िEकचित्।। इन दोनें से रहित बंधा है, बद्ध जीव नहाR छूटेगा। क्षणिक निरन्वय नाश पक्ष म्ें, अन्य जीव फल भोगेगा।।५१।। अन्वयाथर्- (अनभिसंधातृ हिनस्ति अनभिसंधिमत् न हिनस्ति) क्षणिक एकांत म्ें हिंसा के आfभप्राय से रहित जीव हिंसा

करता है और हिंसा के आfभप्राय से सहित आत्मा हिंसा नहाR कर सकती है (तद्व्वयापेक्षं बध्यते बद्धं चित्तं न मुच्यते) आfभप्राय और अनभिप्राय इन दोनें अवस्थाआW से रहित अन्य ही आत्मा बंध को प्राप्त होती है और बंधी हुई आत्मा नहाR छूटती है। कारिकाथर्- हिंसा के आfभप्राय से सहित चित्त तो हिंसक नहाR होगा तथा आfभप्राय से रहित चित्त हिंसा करे एवं हिंसा के आfभप्राय से सहित और रहित से भिVा तीसरा ही चित्त बंध को प्राप्त होगा तथा जो बंधा है, उससे भिVा चौथा ही चित्त बंध से युक्त हो सकेगा अथार्त् आप बौद्धें के क्षणिवैâकांत म्ों यह व्यवस्था हो जायेगी। भावाथर्- बौद्ध के क्षणिक एकांत मत म्ों जो हिंसा का आfभप्राय करता है, वह द्वितीय क्षण म्ों समाप्त हो गया और दूसरा कोई आत्मा आ गया, जो हिंसा कर डालता है पुन: द्वितीय क्षण म्ों वह समाप्त हो जाता है, तब तीसरा ही इस हिंसा के पाप से बंध जाता है और वह समाप्त हो जाता है, इत्यादि बाधाएँ आती हQ।

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (५५) (५६) नाश को निर्हेतुक मानने म्ें दोष

अहेतुकत्वाVाशस्य, हिंसाहेतुनर् हिंसक:। चित्त-सन्तति-नाशश्चा, मोक्षो नाº◻◻ग-हेतुक:।।५२।। यदी नाश निर्हेतुक है, हिंसक हिंसा म्ें हेतु नहाR। तथा चित्तसंतति विनाश से, मोक्ष कहा निर्हेतु सही।। पुन: आप अº◻◻ग निमित्तक, मोक्ष कहा सो वैâसे हो? यदी नाश निर्हेतुक है तब मोक्ष सहेतुक वैâसे हो?।।५२।। अन्वयाथर्- (नाशस्य अहेतुकत्वात् हिंसाहेतु: हिंसक: न) नाश को अहेतुक मानने से हिंसक हिंसा म्ें हेतु नहाR हो सकता है (चित्तसंततिनाश: मोक्ष: च अº◻◻गहेतुक: न) यदि चित्तसंतति के नाश™प मोक्ष होता है, तब वह मोक्ष अº◻◻ग हेतुक नहाR बन सकता है। कारिकाथर्- यदि आप बौद्ध नाश को अहेतुक मानते हQ तो हिंसा के हेतु को हिंसक नहाR मानना चाहिए और चित्तसंतति के निरोध™प मोक्ष को भी अº◻◻ग हेतुक नहाR कहना चाहिए। भावाथर्- बौद्धें ने नाश को निष्कारणक माना है और चित्त संतति के नाश को मोक्ष कहा है पुन: उस मोक्ष को सम्यक्त्व, संज्ञा, संज्ञी, वाक्कायकमर्, अंतव्यार्याम, अजीव, स्मृति और समाधि इन आठ कारणें से होना बताया है। उधर नाश को अहेतुक कह दिया है पुन: चित्तसंतति के नाश™प मोक्ष को अº◻◻ग हेतुक कह दिया, यह बात परस्पर वि®द्ध हो गई है। बौद्ध ने हेतु को विसÂश कायर् के लिए माना है वि™पकायार्रम्भाय, यदि हेतुसमागम:। आश्रायिभ्यामनन्योÓसा-वविशेषादयुक्तवत्।।५३।। कायर् विसÂश करने हेतू, हेतु समागम यदी कहो। तब वह हेतू नाश और उत्पाद उभय म्ें निमित अहो।। आश्रायभूत अत: हेतू, इन दोनें से आभिVा रहता। इक ही मुद्गर घट का नाश, कपाल उत्पाद उभय करता।।५३।। अन्वयाथर्- (यदि वि™पकायार्रम्भाय हेतु समागम:) यदि विसÂश कायर् को उत्पVा करने के लिए हेतु का समागम माना जावे (असौ आश्रायिभ्यां अनन्य: आविशेषात् अयुक्तवत्) तो यह हेतु नाश तथा उत्पाद दोनें का कारण होने से अपने इन दोनें आश्रायियें से भिVा नहाR है, क्येंकि उन नाश, उत्पाद ™प दोनें आश्रायीभूतें म्ें परस्पर म्ें भेद नहाR है। जैसे अपृथक् सिद्ध पदार्थों का कारण अपने आश्रायियें से भिVा नहाR होता है। कारिकाथर्- यदि आप विसÂश कायर् को आरंभ करने के लिए हेतु का समागम स्वीकार करते हQ। तब तो यह हेतु का व्यापार अपने आश्रायी-नाश और उत्पाद से आभिVा ही है क्येंकि उन दोनें म्ें परस्पर म्ें कोई भेद नहाR है। जैसे- अयुक्त-अपृथक् सिद्ध पदार्थों का कारण अपने आश्रायियें से भिVा नहाR होता है।। भावाथर्- बौद्ध का यह कहना है कि नाश तो निर्हेतुक है किन्तु उससे जो कायर् होता है, वह सहेतुक है। जैसे किसी ने घांडे पर मुद्गर मारा तो घांडे का पूâटना मुद्गर हेतुक नहाR है, किन्तु जो कपाल बन गये हQ वे मुद्गर हेतुक हQ क्येंकि वे विसÂश कायर् हQ किन्तु जैनाचार्यों का कहना है कि एक मुद्गर ही घांडे के पूâटने म्ें और कपाल के उत्पVा होने म्ें दोनें म्ें हेतु है अत: एक ही हेतु नाश और उत्पाद दोनें को करता है,

वह बात ही स्प° सिद्ध है। बौद्ध के यहाँ स्वंâधादि म्ें उत्पादादि नहाR बनते हQ स्कन्धा: सन्ततयश्चैव, संवृतित्वादसंस्कृता:। स्थित्युत्पत्तिव्ययास्तेषां, न स्यु: खर-विषाणवत्।।५४।। बौद्धों की स्वंâध संततियाँ, कही गई हQ असंस्कृत™प। क्येंकी वे संवृत्ति™प हQ, नहिं परमाथर्भूत सत्™प।। ™प, वेदना, विज्ञान अ® संज्ञा, संस्कार पांच स्वंâध। व्यय, उत्पाद, धÇौव्य उनम्ें नहिं, घट सकता जैसे खरëृंग।।५४।। अन्वयाथर्- (स्वंâधा: संततयश्चैव असंस्कृता: संवृतित्वात्) बौद्धें के यहाँ संततियाँ अकायर् ™प हQ क्येंकि वे संवृति ™प हQ (तेषंा स्थित्युत्पत्तिव्यया: खरविषाणवत् न स्यु:) अत: उनम्ें उत्पाद, व्यय, धÇौव्य नहाR हो सकते हQ जैसे कि गधे के साRग म्ें उत्पाद-व्यय-धÇौव्य का अभाव है। कारिकाथर्- स्वंâधें की परम्परा असंस्कृत ही है। क्येंकि वह संवृत्ति ™प है, इसलिए खर विषाण के समान इन स्वंâधें म्ें उत्पाद, व्यय, धÇौव्य भी नहाR हो सकता है। भावाथर्- बौद्धें ने हमेशा ही प्रत्येक परमाणु-परमाणु को पृथक्-पृथक् आपस म्ें स्पर्श रहित माना है अत: उसके यहाँ स्वंâध परम्परा असत्य ही है पुन: वह कपाल आदि कायर्™प वैâसे हो सकेगी और जब स्वंâध वास्तविक नहाR है,

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (५७) (५८) तब उनम्ों उत्पाद, व्यय, ध्Çौव्य व्यवस्था असंभव है। बौद्ध के यहाँ स्वंâध के पाँच भेद हQ-™प, वेदना, विज्ञान, संज्ञा, संस्कार। इनकी उत्पत्ति आदि वैâसे बनेगी, क्येंकि ये कायर्भूत नहाR हQ। नित्य क्षणिक का उभय एकांत सदोष है विरोधाVोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्। अवाच्यतैकान्तेÓप्युक्तिनार्वाच्यमिति युज्यते।।५५।। नित्य आfनत्य उभय धर्मों का, मेल सदैव विरोधी है। स्याद्वाद नय के विद्वेषी चूँकि सदा निरपेक्ष कहW।। इन दोनें का 'अवक्तव्य' भी, यदि एकांत विधी से है। तब तो अवक्तव्य यह कहना, सचमुच स्ववचन बाधित है।। ५५।। अन्वयाथर्- (स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्) स्याद्वादन्याय के विद्वेषियें के यहाँ नित्य क्षणिक का उभय एकात्म्य भी असंभव है, क्येंकि परस्पर म्ों विरोध आता है (अवाच्यतैकांते आfप अवाच्यं इति उक्तिः न युज्यते) और इन दोनें का अवाच्य एकांत माना जावे, तो 'तǒव अवाच्य है' यह कथन भी युक्त नहाR है। कारिकाथर्- स्याद्वादनीति से द्वेष रखने वालें के यहाँ नित्यत्व, आfनत्यत्व ™प उभयैकांत मानना भी सिद्ध नहाR है क्येंकि निरपेक्ष उभयैकांत म्ों परस्पर म्ों विरोध है तथा यदि तǒव को सवर्था अवाच्य™प ही स्वीकार करW तो भी "तǒव अवाच्य है" यह कथन भी युक्त नहाR हो सकता है। नित्य और क्षणिक स्याद्वाद म्ों निर्दोष हQ नित्यं तत्प्रत्यभिज्ञानाVाकस्मात्तदविच्छिदा। क्षणिवंâ कालभेदात्ते बुद्ध्यसंचरदोषतः।।५६।। वस्तु सभी हQ नित्य कथंचित् चूँकि उनका प्रत्यभिज्ञान। नहिं होता यह अकस्मात् आfविच्छिVा™प से अनुभवज्ञान।। वस्तु कथंचित् आfनत्य भी है, चूँकि काल से भेद दिख्ों। भगवन्! यदि सवर्था कहW तब ज्ञान असंचर दोष दिखे।।५६।। अन्वयाथर्- (ते तत् नित्यं प्रत्यभिज्ञानात् अकस्मात् न तत् आfविच्छिदा) हे भगवन्! आपके मत म्ों वह वस्तु नित्य है क्येंकि उसका प्रत्यभिज्ञान पाया जाता है और यह प्रत्यभिज्ञान आकस्मिक नहाR है क्येंकि वह आfविच्छिVा ™प से अनुभव म्ों आता है (क्षणिवंâ कालभेदात् बुद्ध्यसंचरदोषतः) वही वस्तु क्षणिक भी है क्येंकि काल के भेद से परिणमन पाया जाता है। यदि एोसा न मान्ों, तो ज्ञान का संचार नहाR होना यह दोष आ जावेगा। कारिकाथर्- हे भगवन्! आपके यहाँ सभी वस्तु कथंचित् नित्य हQ क्येंकि प्रत्यभिज्ञान से जानी जाती है। यह प्रत्यभिज्ञान आकस्मिक-निविर्षयक भी नहाR है। क्येंकि उसका आfविच्छेद ™प से अनुभव होता है तथा वे ही जीवादि वस्तुएँ काल भेद की अपेक्षा से कथंचित् क्षणिक भी हQ अन्यथा बुद्धि का वहाँ संचरण नहाR हो सकता है। भावाथर्- सभी वस्तुएँ कथंचित् नित्य हQ क्येंकि 'यह वही है' एोसा जोंड ™प ज्ञान होता है। यह ज्ञान अकस्मात् तो हो नहाR सकता है प्रत्युत आfविच्छिVा परम्परा से अनुभव म्ों आ रहा है। दस वषर् पहले किसी को देखा है यदि वह सामने आ गया, तब दस वषर् पहले की याद होकर 'यह वही है' ज्ञान देखा जाता है। यदि ज्ञान एक आत्मा के अन्वय™प से विच्छेद रहित न हो, तो एोसा वैâसे

होगा ? उसी प्रकार वे ही सभी वस्तुएँ कथंचित् आिनत्य हQ क्येंकि काल के निमित्त से परिणमन हो रहा है। एक ही पयार्य म्ें बचपन का नाश, जवानी का उत्पाद अथवा देवपयार्य का नाश, मनुष्य पयार्य का उत्पाद आदि देखा जाता है। यदि सभी वस्तुआW को कथंचित् नित्य और आिनत्य न मानें तो ज्ञान म्ें जो संचरण-परिणमन दिखता है, वह नहाR होना चाहिए। उत्पाद, व्यय, धCौव्य की व्यवस्था न सामान्यात्मनोदेति, न व्येति व्यक्तमन्वयात्। व्येत्युदेति विशेषात्ते, सहैकत्रोदयादि सत्।।५७।। भगवन्! तव मत म्ें द्रव्यार्थिक नय से वस्तू नहिं उपजे। नहिं विनशे भी कोई वस्तू, क्येंकि अन्वय प्रगट रहे।। वही वस्तु पयार्यÂि° से, विनशे उपजे क्षण-क्षण म्ें। एक वस्तु म्ें युगपत् व्यय, उत्पाद घCौव्य होना सत् है।।५७।। अन्वयाथर्- (ते सामान्यात्मना न उदेति न व्येति व्यत्तंâ अन्वयात्) हे भगवन्! आपके यहाँ सभी वस्तुएँ सामान्य ™प से न उत्पVा होती हQ न विन° ही होती हQ क्येंकि प्रगट™प से अन्वय™प हQ (विशेषात् व्येति उदेति एकत्र सह उदयादि सत्) और विशेष-पयार्य ™प से वे ही वस्तुएँ न° होती हQ एवं उत्पVा होती हQ क्येंकि एक ही वस्तु म्ें एक साथ उत्पाद, व्यय, धCौव्य का होना 'सत्' कहलाता है।

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (५९) (६०) कारिकाथर्- हे भगवन्! आपके अनेकांत शासन म्ें सभी जीवादि वस्तु सामान्य ™प से न तो उत्पVा होती हQ, न विन० होती हQ। क्येंकि उनम्ें सामान्य ™प अन्वय स्प०तया देखा जाता है। किन्तु विशेष की अपेक्षा से वही उत्पVा होती और विन० होती है एवं युगपत् एक वस्तु म्ें उत्पादादि तीनें ही पाये जाते हQ, क्येंकि 'सत्' उत्पादादि त्रयात्मक ही है। भावाथर्- "उत्पादव्ययधÇौव्ययुत्तâ सत्" इस प्रकार से सत् का लक्षण माना गया है और वही सत् द्रव्य का लक्षण है "सद्द्रव्यलक्षणं" इस सूत्र से स्प० है। द्रव्य का यह लक्षण प्रत्येक द्रव्य म्ें प्रतिसमय पाया जाता है। उत्पाद आदि आfभVा हQ कार्योत्पादः क्षयो हेतोनिर्यमाल्लक्षणात्पृथक्। न तौ जात्याद्यवस्थाना-दनपेक्षाः खपुष्पवत्।।५८।। उपादान कारण का जो क्षय, वही कायर् का है उत्पाद। एक हेतु है दोनें म्ें, फिर भी लक्षण से भिVा विभाग।। जाती आदि अवस्थित कारण, से दोनें म्ें भेद नहाR। उत्पादादि यदी अनपेक्षित, गगनपुष्पवत् असत् सही।।५८।। अन्वयाथर्- (हेतोः क्षयः नियमात् कार्योत्पादः लक्षणात् पृथक्) जो उपादान कारणभूत हेतु का नाश है, वही नियम से कायर् का उत्पाद है एवं लक्षण से दोनें म्ें भिVाता है (न तौ जात्याद्यवस्थानात् अनपेक्षाः खपुष्पवत्) किन्तु जाति अवस्थान के कारण उत्पाद, व्यय भिVा नहाR है। परस्पर की अपेक्षा से रहित उत्पाद, व्यय और धÇौव्य आकाश पुष्प के समान असत् ही हQ। कारिकाथर्- कायर् का उत्पाद ही एक हेतु नियम से अपने मृत्पिंड ™प उपादान कारण का विनाश है। उत्पाद और विनाश ये दोनें अपने-अपने लक्षण से भिVा-भिVा हQ तथा जाति सामान्य आदि के अवस्थान से ये दोनें भिVा नहाR है। परस्पर म्ें अनपेक्ष उत्पाद, व्यय, धÇौव्य ये तीनें ही खपुष्प के समान हQ। भावाथर्- मृत्पिंड ™प उपादान कारण का नाश होकर ही घट™प कायर् उत्पVा होता है, एेसा नियम देखा जाता है। यदि उत्पाद व्यय सवर्था भिVा ही हें, तो व्यवस्था नहाR बन सकती है। हाँ! दोनें का लक्षण भिVा-भिVा अवश्य है। उपादान कारण का पूवर् के आकार से न० हो जाना व्यय है, उत्तराकार से प्रगट हो जाना उत्पाद है एवं दोनें अवस्थाआW मेW वस्तु का आfस्तत्व विद्यमान रहना धÇौव्य है। ये कथंचित् सापेक्ष होकर ही रहते हQ। एक द्रव्य के नाश आदि म्ें भिVा भाव होते हQ घट-मौलिसुवणार्थी, नाशोत्पादस्थितिष्वयम्। शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्यं, जनो याति सहेतुकम्।।५९।। घट का इच्छुक घोंडा नाश से, करता शोक सहेतुक है। मुकुट आfथर् तो मुकुटोत्पाद से, हषिर्त हुआ सहेतुक है।। स्वणार्थी इन उभय अवस्था, म्ें मध्यस्थ स्वभाव धरे। व्यय-उत्पाद-धÇौव्य के ये, Â०ांत सहेतुक कहे खरे।।५९।। अन्वयाथर्- (अयं जनः घटमौलिसुवणार्थी) जो मनुष्य घट, मुकुट या स्वणर् के इच्छुक हQ वे ›âम से (नाशोत्पादस्थितिषु सहेतुकम् शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं याति) घट के नाश म्ें सकारणक शोक को, मुकुट के उत्पाद म्ें प्रमोद को एवं दोनें

अवस्थाआW म्ें सुवणर् के रहने से सुवणर् इच्छुक माध्यस्थ भाव को प्राप्त होते हQ। कारिकाथर्- घट, मौलि एवं सुवणर् के इच्छुक ये तीन व्यक्ति नाश, उत्पाद एवं स्थिति म्ें सहेतुक ही शोक, प्रमोद एवं माध्यस्थ भाव को प्राप्त होते हQ। भावाथर्- यदि कोई सुवणर् के घट को तुाेंडवाकर उससे मुकुट बनवा रहा है, तो घट का इच्छुक जन शोक को प्राप्त हो जाता है और उसका शोक सकारणक होता है। जो मुकुट चाहता था, वह मनुष्य मुकुट पाकर प्रसVा हो जाता है एवं यदि कोई सुवणर् मात्र का इच्छुक था, तो वह दोनें ही अवस्थाआW म्ें शोक-हषर् न करके मध्यस्थ भाव से उसे ले लेता है। नाश, उत्पाद और धÇौव्य इन तीनें ही अवस्थाआW म्ें मनुष्य की प्रवृत्ति विषाद आदि™प हो रही है, वह सहेतुक है, अहेतुक नहाR है। वस्तु तÙव त्रयात्मक है पयो›ोतो न दध्यत्ति, न पयोत्ति दधि›ोत:। अगोरस›ोतो नोभे, तस्मात्तÙवं त्रयात्मकम्।।६०।। क्षीर पिऊँगा यह ›ोत जिसके, दही नहाR वह खाता है। दधि›ोत वाला क्षीर न पीता, चूँकि क्षीर को त्यागा है।। गोरस त्यागी उभय न लेता, चूँकि द्रव्य पर Âि° धरे। इससे वस्तू तÙव त्रयात्मक, सह धÇुव व्यय उत्पाद धरW।।६०।। अन्वयाथर्- (पयो›ोतो न दधि आत्ति दधि›ोत: न पय: आत्ति) जिसको दूध पीने का ›ोत है वह दही नहाR खाता है, दधि के नियम वाला दूध को नहाR पीता

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) है (अगोरस›तो न उभे तस्मात् तŏवं त्रयात्मवंâ) और जिसको गो रस का त्याग है, वह दूध-दही दोनें को नहाR पीता है, इसीलिए वस्तु तŏव त्रयात्मक है। कारिकाथर्-जिसका दूध ही लेने का नियम है वह दधि को नहाR खाता है और जिसको दधि को लेने का नियम है वह दूध नहाR पीता है और जिसका गोरस का ही त्याग है वह दूध और दही दोनें को ही नहाR खाता है इसलिए तŏव भी त्रयात्मक है। ।।इति तृतीय: परिच्छेद:।। N : श् तृतीय परिच्छेद का सार नित्यैकांत-आfनत्यैकांत का खंडन और स्याद्वाद सिद्धि (कारिका ३७ से ६० तक) सांख्य सभी पदार्थों को सवर्था वूâटस्थ नित्य मानते हQ, उनका कहना है कि आत्मा जानने ™प ›âया का भी कत्तार् नहाR है। ज्ञान और सुख प्रकृति (जांड) के धमर् है, केवल आत्मा इनका भोक्ता अवश्य है। ये लोग कारण म्ें कायर् को सदा विद्यमान ™प ही मानते हQ। इस पर जैनाचार्यों का कहना है कि सभी पदार्थों म्ें परिणमन दिख रहा है अत: वे सवर्था नित्य नहाR हQ तथा ज्ञान और सुख ये आत्मा के ही स्वभाव हQ, आत्मा से भिVा नहाR हQ। मQ सुखी हूँ, मQ दु:खी हूँ इत्यादि™प से जो स्वसंवेदन होता है वह ज्ञान के द्वारा ही होता है और वह अनुभव सवर्था नित्य नहाR है। प्रत्येक वस्तु पूवार्कार को छोांडकर उत्तराकार को ग्राहण करती है और उन दोनें अवस्थाआW म्ें अन्वय संबंध पाया जाता है, इस अन्वय स्वभाव से वस्तु नित्य है तथा पूवार्कार, उत्तराकार के त्याग और ग्राहण™प से व्यय और उत्पाद स्व™प भी है, अत: आfनत्य भी है। जीव ने मनुष्य पयार्य को छोांडकर देव पयार्य ग्राहण की तथा दोनें अवस्थाआW म्ें अन्वय ™प जीवात्मा विद्यमान है, एेसा स्प° है तथा मिŏी से वुंâभकार घट बनाता है, घट उसम्ें विद्यमान था वुंâभार ने प्रगट कर दिया, यह कल्पना गलत है। हाँ, मिŏी म्ें घट शक्ति™प से अवश्य है अथार्त् मिŏी म्ें घट बनने की शक्ति अवश्य है, कारक निमित्तें से प्रकट हो जाती है अत: आत्मा आदि पदाथर् द्रव्य Âि° से नित्य हQ, पयार्य Âि° से आfनत्य हQ। बौद्ध का कहना है कि सभी पदाथर् सवर्था क्षण-क्षण म्ें न° हो रहे हQ। उनम्ें जो कहाR स्थायित्व दिख रहा है वह सब वासना मात्र है तथा ये लोग कारण का जांडमूल से विनाश मानकर ही कायर् की उत्पत्ति मानते हQ। इस पर जैनाचायर् कहते हQ कि सभी पदार्थों को सवर्था क्षणिक मानने पर तो स्मृति, प्रत्यभिज्ञान आदि सिद्ध नहाR हेंगे, प्रात: अपने घर से निकलकर कोई भी व्यक्ति पुन: यह वही घर है, जिसम्ें मQ रहता हूँ, एेसा स्मृतिपूवर्क प्रत्यभिज्ञान नहाR हो सकने से वापस नहाR आ सकेगा। पुन: सारे लोक व्यवहार समाप्त हो जाव्ेंगे तथा मृत्पिंड के सभी परमाणु का सवर्था नाश हो गया पुन: घट किससे बना ? यह प्रश्न होता रहेगा, कारण के विनाश के बाद कायर् की उत्पत्ति मानने (६१) (६२)

 से तो मिó्ी से ही घट क्यें बने ? तंतु से घट और मृत्पिंड से वŒा भी बन जाय्ेंगे, जौ के अंकुरें से चने पैदा होने लग्ेंगे, कोई व्यवस्था नहाR बन सकेगी। अत: कारण का कायर्™प परिणत हो जाना ही कायर् है। तंतु ही वŒा ™प परिणत होते हQ, यही सिद्धांत सत्य है। बौद्ध कहता है कि वस्तु सत् है, असत् है, उभय ™प है, अनुभय ™प है, ये चार विकल्प ही हो सकते हQ और ये चारें ही विकल्प अवाच्य हQ-कहे नहाR जा सकते अत: ‘वस्तु अवाच्य है।’ जैनाचायर् कहते हQ कि भाई! ‘वस्तु अवाच्य हQ’ इस वाक्य से भी पुन: तुमने वैâसे कहा, इस वाक्य से वाच्य कर देने से वह अवाच्य कहां रही, यह तो एेसा है कि कोई मुँह से कहे कि ‘मQ मौन›ती हूँ’ बौद्ध की एक और मान्यता बहुत ही विचित्र है वह कहता है कि ‘विनाश अहेतुक है’ घांडे पर मुद्गर का प्रहार हुआ वह पूâट गया, तो उसका कहना है कि मुद्गर के निमित्त से घांडा नहाR पूâटा है, प्रत्युत स्वभाव से ही पूâटा है। हाँ, मुद्गर के निमित्त से कपाल टुकांडे अवश्य उत्पVा हुए हQ। जैनाचायर् तो घांडे के पूâटने म्ें और कपाल के उत्पVा होने म्ें दोनें म्ें ही एक मुद्गर को ही हेतु मानते हQ क्येंकि इन्हेंन् पूवार्कार घट का विनाश और उत्तराकार कपाल का उत्पाद इन दोनें को एक हेतुक और एक समय म्ें ही माना है। घट का पूâटना ही तो कपाल का उत्पाद है। इस बेचारे बौद्ध ने तो कायर् को ही सहेतुक मान लिया है, किन्तु आजकल कुछ एेसे भी लोग हQ जो विनाश और उत्पाद दोनें को ही अहेतुक कह देते हQ, उनका कहना है कि कायर् का उत्पाद होना था, तब निमित्त उपस्थित हो गया, वह सवर्था आिवंâचित्कर है, उस बेचारे ने क्या किया है ? एेसा कहने वालें की दशा तो बौद्धें से भी आिधक शोचनीय है। बौद्ध के सवर्था क्षणिक मत म्ें अपने किये हुए को नहाR भोगना और दूसरे के किए हुए का फल पाना ये दोष भी आ जाते हQ। जैसे-किसी व्यक्ति की आत्मा ने हिंसा का भाव किया, वह उसी क्षण न° हो गई, दूसरी आत्मा ने आकर हिंसा कर दी, वह भी न° हो गई, तीसरी आत्मा को पाप का बंध हो गया, उसी क्षण वह भी न° हो गया, चौथी आत्मा ने आकर उसका फल दु:ख भोगा। अहो! यह सिद्धान्त बहुत ही हास्यास्पद है। सप्तभंगी प्रि›âया- जैन सिद्धान्त के अनुसार तो सभी पदाथर् कथंचित् नित्य हQ क्येंकि द्रव्याथिर्क नय से वे कभी न° नहाR होते हQ। सभी पदाथर् कथंचित् आिनत्य हQ क्येंकि पयार्यें का विनाश और उत्पाद देखा जाता है। सभी पदाथर् कथंचित् नित्य और आिनत्य उभय™प हQ क्येंकि ›âम से द्रव्याथिर्क और पयार्याथिर्क दोनें नयें की अपेक्षा है। सभी पदाथर् कथंचित् अवक्तव्य हQ क्येंकि एक साथ दोनें नयें की विवक्षा होने से दोनें धमर् एक साथ कहे नहाR जा सकते हQ। सभी पदाथर् कथंचित् नित्य और अवक्तव्य हQ क्येंकि ›âम से द्रव्याथिर्क नय और युगपत् दोनें की विवक्षा है। सभी पदाथर् कथंचित् आिनत्य और अवक्तव्य इस छठे भंग™प हQ क्येंकि ›âम से पयार्याथिर्क नय और युगपत् दोनें नयें की विवक्षा है। सभी पदाथर् कथंचित्

नित्यानित्य और अवक्तव्य हQ क्येंकि ›âम से दोनें नय और युगपत् दोनें नयें की अपेक्षा है। इस प्रकार सप्तभंगी

प्रि›âया से सभी बात्ें व्यवस्थित हQ। N : श् (६३) (६४)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (६५) (६६) अथ चतुथर्: परिच्छेद: क्या कायर् कारण आदि सवर्था भिV ा हQ ? कायर्-कारण-नानात्वं, गुणं-गुण्यन्यतापि च। सामान्य-तद्वदन्यत्वं, चैकान्तेन यदीष्यते।।६१।। कायर् और कारण म्ों भेद, गुणी से गुण भी भिV ा रहे। उसी तरह सामान्य और, सामान्यवान् भी पृथक् कहW।। वैशेषिक मत कहे सवर्था, भिV ा-भिV ा गुण द्रव्य सभी। पुन: वस्तु से स०व पृथव्â हQ, अत:वस्तु हQ असत् सभी।।६१।। अन्वयाथर्- (यदि एकांतेन कायर्कारणनानात्वं गुणगुण्यन्यतापि च) यदि आप एकांत से कायर्-कारण म्ों और गुण-गुणी म्ों भेद मानते हQ (सामान्यतद्वदन्यत्वं इष्यते) और सामान्य एवं सामान्यवान् म्ों भी भेद मानते हQ, तब तो क्या दोष आता है उसे अगली कारिका म्ों बताते हQ। कारिकाथर्- कायर् कारण म्ों सवर्था भिV ाता है, गुण और गुणी म्ों भी सवर्था भिV ाता है एवं सामान्य और सामान्यवान् म्ों सवर्था भिV ाता है। यदि आप एकांत से ए ेसा मानते हQ तो इस कारिका की अ°सहœ ी टीका म्ों इनकी एकांत मान्यता देकर अगली कारिका म्ों उसका निराकरण किया है। वैशेषिक के सवर्था भिV ैकांत म्ों दोष एकस्याÓनेक-वृत्तिनर्, भागाÓभावाद्बहूनि वा। भागित्वाद्वाÓस्य नैकत्वं, दोषो वृत्तेरनार्हते।।६२।। एक अनेकें म्ों नहिं रहता, चूँकि अंश नहिं है उसम्ों। यदि वा अंश कहो उसम्ों, तब कायर् एक ही बहुत बन्ों।। यदि भागित्व कहो तब तो वह, एक न एक कहा सकता। अर्हत् मत से भिV ा जनें म्ों, वृत्ति दोष यह कहलाता।।६२।। अन्वयाथर्- (एकस्य अनेकवृत्ति: न भागाÓभावाद् बहूनि वा) सवर्था कायर्कारण आदि म्ों भेद मानने पर तो एक की अनेकें म्ों वृत्ति नहाR हो सकेगी, क्येंकि उस एक म्ों विभाग के अभाव से निरंशता है अथवा अनेकें म्ों रहना मानें, तो वह एक बहुत हो जाव्ोंगे (भागित्वात् वा अस्य एकत्वं न अनार्हते वृत्ते: दोष:) अथवा यदि उस एक को भागित्व ™प मानकर वृत्ति मानें तो उसका एकत्व नहाR बन सकता है। इस प्रकार से अर्हंत मत से भिV ा सवर्था एकांत म्ों एक की अनेक म्ों वृत्ति मानने से अनेकें दोष आ जाते हQ। कारिकाथर्- एक की अनेक म्ों वृत्ति नहाR हो सकती है क्येंकि उनम्ों भाग- अंशें का अभाव है अथवा यदि वृत्ति मानोगे तब तो एक को अनेक ™प मानना पांडेगा तथा यदि एक ही अवयवी के भाग-अंश मानोगे, तब तो यह एक ™प नहाR कहा जायेगा, इस प्रकार से एक की अनेक वृत्ति मानने पर हे अर्हंत्! आपके मत से बा¢ परमतावलम्बियें के यहाँ अनेक दोष आते हQ। भावाथर्- वैशेषिक कायर्-कारण आदि को सवर्था भिV ा मानते हQ उनके यहाँ वŒ ा एक कायर् है और वह अंश कल्पना से रहित है तथा अपने अनेक तंतु कारणें म्ों रहता है कुछ समझ म्ों नहाR आता है कि एक निरंश कायर् अनेकें कारण तंतुआW म्ों वैâसे रहता है? हम जैनियें के यहाँ मात्र परमाणु को निरंश कहा है और आकाश को भी अंश सहित सिद्ध किया है वह कायर् कारण म्ों वैâसे रहता है, इत्यादि का अ°सहœ ी म्ों स्पष्टीकरण किया गया है। वैशेषिक को देश-

काल भेद भी मानना चाहिए देश-काल-विशेषेÓपि, स्याद्वृत्तिर्युत-सिद्धवत्। समान-देशता न स्यान्मूतर्कारण-कायर्यो:।।६३।। यदि अवयव-अवयवी आदि म्ों, भेद सवर्था कहो सुजान। देश-काल से भी होगा यह, भेद पुन: युतसिद्ध समान।। पृथक्-पृथक् आश्राय वाले, घट-पट म्ों भी वृत्ती होगी। तब तो मूतर् कायर् कारण म्ों, एकदेशता नहिं होगी।।६३।। अन्वयाथर्- (देशकालविशेषे आÏप युतसिद्धवत् वृत्तिः स्यात्) यदि अवयव अवयवी का परस्पर म्ों सवर्था भेद माना जाये, तो देश और काल की अपेक्षा से भी भेद मानना पांडेगा, तब युतसिद्धवत् पृथक्-पृथक् आश्राय म्ों रहने वाले घट- घट के समान इनम्ों भी वृत्ति माननी होगी। (मूतर्कारणकायर्यो: समानदेशता न स्यात्) पुन: मूतिर्क कारण और कायर् म्ों जो समान देशता देखी जाती है, वह नहाR हो सकेगी। कारिकाथर्- अवयव, अवयवी आदि म्ों परस्पर म्ों अत्यन्त भेद मानने पर देशकाल की अपेक्षा से भी इनम्ों भेद मानना होगा एवं देश, काल से भी भेद के मानने पर इनकी वृत्ति युतसिद्ध पदार्थों की तरह होगी, पुन: मूतर् कायर्-कारण म्ों सामान्य देशता-एकदेशपना नहाR बन सकेगा।

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (६७) (६८) भावाथर्- इसका भाव यह है कि जब धमर् और धर्मी म्ें अवयव-अवयवी आदि पदार्थों म्ें सवर्था ही अत्यंत भेद है तब देश और काल की अपेक्षा भी उनम्ें भेद मानना पडेगा। जैसे घट और वृक्ष आदि पदाथर् सवर्था भिV्ा हQ वैसे ही जीव और ज्ञान, वŒ्ा और तंतु आदि भी सवर्था ही भिV्ा रहWगे। घट और उसकी मिó्ी म्ें भी सवर्था भेद ही बना रहेगा। समवाय से वृत्ति मानने म्ें दोष आश्रायाश्रा्यिभावाV्ा स्वातन्त्र्यं समवायिनाम्। इत्ययुक्त: स संबन्धो न युक्त: समवायिभि:।।६४।। यदि समवायी पदाथर् का है आश्राय और आश्रायी भाव। अत: स्वतंत्र नहाR है जिससे, भिV्ों म्ें है वृत्ति अभाव।। चूँकि स्वयं जो असम्बद्ध, वह एक अवयवी वस्तू का। अवयव बहुतें से वैâसे तद्वत् संबंध करा सकता?।।६४।। अन्वयाथर्- (समवायिनां आश्रायाश्रा्यिभावात् स्वातंत्र्यं न) यदि कहा जाये कि समवायी अवयव-अवयवी आदि म्ें आश्राय-आश्रायी भाव होने के कारण स्वतंत्रता नहाR है (इति समवायिभि: अयुक्त: स संबंध: न युक्त:) तब तो समवायियें के साथ अयुक्त-दूसरे समवाय संबंध से असंबंधित वह समवाय संबंध घटता ही नहाR है। अथार्त् जो स्वयं असंबद्ध है, वह एक का दूसरे के साथ संबंध वैâसे करा सकता है ? कारिकाथर्- आश्राय और आश्रायी भाव के होने से समवायि-तंतुपटादिकें म्ें स्वतंत्रता-भिV्ाता नहाR है यदि आप वैशेषिक ए्ेसा कहते हQ, तब तो समवायियें के साथ अयुक्त (दूसरे समवाय संबंध से असंबंधित) वह समवाय संबंध युक्तियुक्त नहाR है अथार्त् समवाय लक्षण संबंध समवायियें के साथ असंबंधित होने से सिद्ध नहाR हो पाता है। भावाथर्- वैशेषिक का कहना है कि कायर्कारण, ि›âया-ि›âयावान्, गुण- गुणी आदि म्ें स्वतंत्रता नह्ी है कि जिससे युत-सिद्ध पदार्थों के समान देश और काल आदि के भेद से उनकी वृत्ति मानी जा सके, इनम्ें आश्राय-आश्रायी भाव है। अवयव आदि आश्रायभूत हQ और अवयवी आदिकें म्ें आश्रायी भाव है तथा ये परस्पर म्ें समवाय संबंध से बंधे हQ, अत: ये समवायी पदाथर् देश काल आदि के भेद से अपनी वृत्ति नहाR कर सकते हQ। इस पर जैनाचायर् कहते हQ कि हे वैशेषिक! समवायियें को आश्राय- आश्रा्यिभाव म्ें रखकर उनको परस्पर म्ें जोडने वाला यह समवाय पदाथर् उनकी स्वतंत्रता को अपहरण करने वाला है। वह समवाय इन समवायियें म्ें दूसरे समवाय से जुडता है, यह स्वत: ? यदि यह समवाय इन समवायियें म्ें दूसरे समवाय से रहता है तो अनवस्था दोष आता है। यदि कहो कि समवाय अपने समवायियें म्ें स्वत: रहता है तो फिर इन द्रव्यादि समवायियें को इस समवाय के द्वारा जुडने की क्या आवश्यकता है जैसे बिना समवाय के यह समवाय अपने द्रव्यादि समवायियें म्ें जुड जाता है, ए्ेसे ही द्रव्य गुण आदि स्वयं बिना समवाय के जुडे हुए हQ मान लो क्या बाधा है ? सामान्य समवाय एक-एक हQ सामान्यं समवायश्चाप्येवैâकत्र समाप्तित:। अन्तरेणाश्रायं न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधि:।।६५।। आश्राय बिन सामान्य और

समवाय नहाIR रहते प्रत्येक। एक-एक द्रव्यादि नित्य म्ों, समाप्त होते ये इक-एक।। पुन: न° उत्पVा आिनत्यें कार्यों म्ों वैâसे हेंगे?। चूँकि नित्य ये दोनें उन, वस्तू म्ों वैâसे ठहरWगे।।६५।। अन्वयाथर्- (सामान्यं समवायश्चा आिप आश्रायं अन्तरेण न स्यात् एवैâकत्र समािप्तत:) ये सामान्य और समवाय दोनोW भी आश्राय के बिना नहाIR रह सकते हQ क्येंकि ये दोनें एक-एक ही हQ अत: एक-एक द्रव्य आदि म्ों ही समाप्त हो जाते हQ (नाशोत्पादिषु क: विधि:) तब नाश हुए और उत्पVा हुए आिनत्य कार्यों म्ों उन सामान्य और समवाय की व्यवस्था वैâसे बनेगी ? कारिकाथर्- जिस प्रकार से सामान्य सत्ता बिना आश्राय के नहाIR रह सकता है, तथैव समवाय भी बिना आश्राय के नहाIR रह सकता है और अपने आश्रायभूत प्रत्येक नित्य व्यक्तियें-पदार्थों म्ों ये दोनें पूणर्™प से रहते हQ। इसलिए नाशोत्पादादि-आिनत्य पदार्थों म्ों इनका विधान वैâसे होगा अथार्त् इनका आिस्तत्व वहाँ वैâसे सिद्ध होगा ? सामान्य समवाय भी परस्पर म्ों भिVा हQ सवर्थानभिसंबंध: सामान्यसमवाययो:। ताभ्यामर्थो न संबद्धस्तानि त्रीणि खपुष्पवत्।।६६।।

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (६९) (७०) आपस म्ें सामान्य और, समवाय सदा संबंध रहित। इन दोनें से द्रव्य गुणादिक, पदाथर् नहिं हQ संबंधित।। इसीलिए सामान्य तथा, समवाय अथर् ये तीनें ही। गगनकुसुमवत् 'असत्' अवस्तू हो जावे परमत म्ें ही।।६६।। अन्वयाथर्- (सामान्यसमवाययो: सवर्था अनभिसंबंध:) सामान्य और समवाय का सवर्था ही परस्पर म्ें कोई संबंध नहाR है (ताभ्यां अर्थो न संबद्ध: तानि त्रीणि खपुष्पवत्) तब उन दोनें के साथ द्रव्य गुण आदि अथर् भी संबंधित नहाR है पुन: सामान्य समवाय और पदाथर् ये तीनें ही आकाशपुष्पवत् असत् ठहरते हQ। कारिकाथर्- सामान्य और समवाय का सवर्था-संयोगादि प्रकार से संबंध नहाR है। क्येंकि संयोग दो द्रव्यें म्ें ही होता है और इन दोनें के द्वारा अथर्- पदाथर् संबंधित नहाR होता है। अत: सामान्य-समवाय और पदाथर् ये तीनें ही खपुष्प के समान असत् हो जाय्ेंगे। परमाणु की अन्य™प परिणति न मानने म्ें दोष अनन्यतैकान्तेÓणूनां संघातेÓपि विभागवत्। असंहतत्वं स्याद्भूतचतुष्वंâ भ्ŭान्तिरेव सा।।६७।। यदि परमाणु सदा नित्य हQ, अन्य ™प परिणम्ें नहाR। तब स्वंâध ™प म्ें भी वे, भिVा-भिVा ही रहW सही।। पुन: भूमि-जल-वायु आग्नि, इन भूतचतु्टय का स्वंâध। भ्ŭांत™प ही हो जावेगा, क्येंकि अणू सब पृथव्â-पृथक्।।६७।। अन्वयाथर्- (अणूनां अनन्यतैकांते विभागवत् संघाते आfप असंहतòवं स्यात्) यदि परमाणुआW को एकांत ™प से अनन्य-एक™प ही माना जावे अथार्त् परमाणुआW का कभी भी भिVा-भिVा™प परिणमन न माना जाये, तब तो परमाणुआW का संघात होने पर भी स्वंâध™प होना नहाR बन सकेगा जैसे कि परमाणुआW के विभाग म्ें स्वंâध होना नहाR बनता है (सा भूतचतुष्कभ्ŭांति: एव) पुन: जो भूत चतुष्क हQ वे भ्ŭांति ™प ही रहWगे। कारिकाथर्- परमाणुआW म्ें आfभVा ™प एकांत पक्ष के मानने पर उनकी संघात-स्वंâध अवस्था म्ें भी विभाग-विभक्त पदार्थों की तरह उनको पृथक्- पृथक् परस्पर असंबंधित ही मानना पाेडेगा, पुन: एेसी स्थिति म्ें आपके द्वारा स्वीकृत भूतचतुष्क भ्ŭांति™प ही हो जायेगा, अथार्त् पाथिर्व जलीय, तैजस एवं वायवीय परमाणुआW के संघात™प पृथ्वी, जल, आग्नि, वायु, भूतचतुष्क हQ। ये भ्ŭांत हो जाय्ेंगे। कायर् भ्ŭांत है तो कारण भी भ्ŭांत है कायर्भ्ŭान्तेरणु-भ्ŭान्ति: कायर्लिंगं हि कारणम्। उभयाÓभावतस्तत्स्थं, गुणजातीतरच्च न।।६८।। यदि कायर् स्वंâध भ्ŭांत हQ, तब कारण परमाणू भ्ŭांत। चूँकि कायर् हेतू से होता, कारण परमाणू का ज्ञान।। यदि दोनें ये भ्ŭांत हुए तब, दोनें का हो गया अभाव। उनम्ें रहने वाले गुण जात्यादिक का फिर नहिं सद्भाव।।६८।। अन्वयाथर्- (कायर् भ्ŭांते: अणुभ्ŭांति: कारणं कायर्लिंगं हि) यदि स्वंâध™प भूतचतु्टय को भ्ŭांत कहोगे, तो उसके कारणभूत परमाणु भी भ्ŭांत ही मान्ें जाव्ेंगे, क्येंकि कारण कायर् हेतुक ही होता है (उभयभावत: तत्स्थं गुणजातीरत् च न) पुन:

कायर्कारण दोनें ही भü्ांत होने से दोनें का अभाव हो जावेगा और तब उनम्ें रहने वाले गुण जाति ि›ìâयादि भी नहाR बन सव्ेंâगे। कारिकाथर्- कायर्भूत चतुष्क को भü्ांत मानने से परमाणुआW को भी भü्ांत मानना पांडेगा। क्येंकि कायर् के हेतु से ही कारण का ज्ञान होता है एवं इन दोनें के अभाव से इनम्ें स्थित रहने वाले गुण, जाति और ि›ìâया आदि कुछ भी सिद्ध नहाR हो सव्ेंâगे। सांख्य के यहाँ कायर्कारणादि म्ें एकत्व ही है एकत्वेÓन्यतराभाव:, शेषाÓभावोÓविनाभुव:। द्वित्वसंख्याविरोधश्च, संवृत्तिश्चोन्मृषैव सा।।६९।। कायर् और कारण म्ें यदि, एकत्व कहो तब एक रहे। चूँकी दोनें आिवनाभावी, अत: शेष भी नहाR रहे।। द्वित्व कथन भी वि®द्ध होता, यदि संवृत्ति से मानोगे। संवृत्ति तो यह मृषा कहाती, अत: सभी मिथ्या हेंगे।।६९।। अन्वयाथर्- (एकत्वे अन्यतराभाव: शेषाभावो आिवनाभुव:) यदि सांख्य मतानुसार कायर्-कारण आदि म्ें सवर्था एकत्व ही माना जाये तो एक की मान्यता म्ें दो म्ें से किसी एक का अभाव ही ठहरेगा पुन: जो एक बचा है उसका भी अभाव हो जावेगा, क्येंकि वह पहले के साथ आिवनाभावी था (द्वित्वसंख्याविरोधश्चा

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (७१) (७२) संवृति: चेत् सा मृषा एव) पुन: द्वित्व आदि संख्या का भी विरोध हो जावेगा। यदि कहो कि द्वित्व आदि संख्याएँ संवृति ™प हQ तब तो यह संवृति तो असत्य ही है। कारिकाथर्- आप सांख्य आदि सवर्था कायर्-कारण म्ें एकत्व स्वीकार करWगे तब तो दोनें म्ें से किसी एक का अभाव हो जायेगा। पुन: एक किसी का अभाव होने पर शेष दूसरे बचे हुए का भी अभाव हो जायेगा; क्येंकि उन दोनें म्ें आfवनाभाव नियम है तथा च 'यह कायर् है और यह कारण है' इस तरह की दो की संख्या म्ें भी विरोध हो जायेगा। यदि आप कहW कि संवृत्ति से ये सब कायर्-कारण, द्वित्व संख्यादि हQ तब तो वह आपकी संवृत्ति तो सवर्था असत्य ही है। सवर्था भिV्ा-आfभV्ा की उभय और अवाच्य भी सदोष है विरोधाV्ोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्। अवाच्यतैकान्तेÓप्युक्तिनार्वाच्यमिति युज्यते।।७०।। यदी कायर् कारण म्ें भेदा-भेद उभय का ए्ेक्य कहो। स्याद्वादमत द्वेषी के यह, वैâसे होगा सत्य अहो।। यदी कायर्-कारण का भेदा-भेद अवाच्य कहे कोई। तब 'अवाच्य' यह कथन असंगत, स्याद्वाद बिन घटे नहाR।।७०।। अन्वयाथर्-(स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्) स्याद्वाद न्याय के विद्वेषी लोगें के यहाँ कायर्-कारण आदि की भिV्ाता और आfभV्ाता इन दोनें का एकात्म्य माना जाये, तो भी नहाR बनता है क्येंकि इन भिV्ा-आfभV्ा का परस्पर म्ें विरोध है (अवाच्यतैकांते आfप अवाच्यं इति उक्ति: न युज्यते) यदि सवर्था दोनें को अवाच्य™प स्वीकार किया जावे, तो कायर्-कारण का भेद-अभेद अवाच्य है, यह कथन भी नहाR बन सकेगा। कारिकाथर्- स्याद्वाद नीति के शत्रुआW के यहाँ अन्यता और अनन्यता™प उभयैकात्म्य संभव नहाR है, क्येंकि वे दोनें परस्पर विरोधी हQ। यदि कोई कहे कि हम तǒव को अन्यत्व, अनन्यत्व से रहित "अवाच्य™प" मानते हQ, तब तो तǒव अवाच्य है। इस प्रकार से वाक्य द्वारा कथन भी नहाR कहा जा सकता है। कथंचित् कायर्-कारण आदि का भेद-अभेद ठीक है द्रव्यपयार्ययोरैक्यं, तयोरव्यतिरेकत:। परिणामविशेषाच्च, शक्तिमच्छक्तिभावत:।।७१।। द्रव्य और पयार्य कथंचित्, एक™प हQ अभेद ही। क्येंकि उभय है आfभV्ा उनका, पृथक्करण है शक्य नहाR। । द्रव्य और पयार्य कथंचित्, भिV्ा कहे सवर्था नहाR। चूँकि भिV्ा परिणमन भेद से, शक्तिमान अ® शक्ति से भी।।७१।। संज्ञासंख्या-विशेषाच्च, स्वलक्षणविशेषत:। प्रयोजनादिभेदाच्च, तV्ाानात्वं न सवर्था।।७२।। नाम भेद से संख्या से भी, द्रव्य और पयार्य पृथक्। निज-निज लक्षण भेद उभय म्ें, इसीलिए हQ पृथवâ-पृथक्।। दोनें का है भिV्ा प्रयोजन, अ® प्रतिभास भेद भी है। इसी अपेक्षा द्रव्य और, पयार्य कथंचित् भिV्ा रहW।।७२।। अन्वयाथर्-(द्रव्यपयार्ययो: ए्ेक्यं तयो: अव्यतिरेकत:) द्रव्य और पयार्यें म्ें कथंचित् आfभV्ाता है क्येंकि उन दोनें को पृथक् नहाR कर सकते हQ (तV्ाात्वं परिणामविशेषात् च शक्तिमत् शक्तिभावत:) कथंचित् द्रव्य और पयार्यें म्ें

भिVाता भी है क्येंकि उनम्ें परिणमन भेद पाया जाता है और शक्तिमान् एवं शक्तिभाव से भी भेद है। (संज्ञासंख्याविशेषात् च स्वलक्षणविशेषत: प्रयोजनादिभेदात् च) द्रव्य पयार्य म्ें कथंचित् नाम, संख्या आदि भेद से भी भेद हQ। अपने-अपने लक्षण भेद से भी भेद है एवं प्रयोजन, काल, प्रतिभास आदि से भी भेद है (सवर्था न) किन्तु द्रव्य पयार्यें म्ें सवर्था भेद नहाR है। कारिकाथर्- द्रव्य और पयार्य म्ें एकत्व हQ, क्येंकि वे दोनें सवर्था भिVा नहाR है तथा परिणाम विशेष से शक्तिमान, शक्तिभाव से, संज्ञा, संख्या की विशेषता से, अपने-अपने लक्षणें की भिVाता से एवं प्रयोजनादि के भेद से वे दोनें नाना-भिVा-भिVा भी हQ, किन्तु सवर्था भिVा-भिVा नहाR हQ। ।।इति चतुथर: परिच्छेद:।। N : श्

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) चतुथर् परिच्छेद का सार भेदैकांत और अभेदैकांत का खंडन और स्याद्वाद सिद्धि (कारिका ६१ से ७२ तक) योग कहता है कि कायर्-कारण, गुण-गुणी, अवयव-अवयवी आदि सभी परस्पर म्ों भिVा-भिVा हQ। यह समवाय नाम का एक संबंध मानता है जिसका अथर् है ‘अयुतसिद्ध म्ों संबंध होना’ उस समवाय से ही सब के संबंध मानता है। जैसे-जीव से ज्ञान भिVा है समवाय से ईÕार संबंधित हुआ है किन्तु जीव म्ों ज्ञान के संबंध के पहले जीव का तथा ज्ञान का पृथक्-पृथक् आfस्तत्व दिख नहाR रहा है जैसे-दंड के संबंध के पहले मनुष्य और दंड दोनें अलग-अलग दिख रहे हQ पीछे उनका संबंध हो जाने से ‘दंडी’ यह संज्ञा हो जाती है वैसे यहाँ गुण-गुणी पृथक् ™प से दिखते नहाR है। कायर्-कारण म्ों भी सवर्था भिVाता नहाR है कथंचित् ही है। इनका समवाय भी सिद्ध नहाR होता है जिसे हम जैन तादात्म्य संबंध कहते हQ उसे समवाय भले ही कह दो किन्तु अलग से यह कोई समवाय संबंध सिद्ध नहाR है। सांख्य का कहना है कि महान अलंकार आदि कायर् हQ और प्रधान कारण है, इन दोनें म्ों परस्पर म्ों एकत्व ही है। आचायर् कहते हQ कि कायर् कारण म्ों सवर्था एकत्व मानने से तो दोनें म्ों से कोई एक ही रहेगा और दूसरे का अभाव हो जावेगा। पुन: एक के अभाव म्ों दूसरा भी नहाR रह सकेगा अत: कायर्, कारण आदि को सवर्था एक™प नहाR मानना चाहिए। योग परस्पर निरपेक्ष भिVाता और आfभVाता दोनें ही मान लेते हQ। बौद्ध कहता है कि वस्तु सवर्था अवाच्य ही है किन्तु जैनाचायर् परस्पर सापेक्ष ™प से तòव को भिVा-भिVा उभयात्मक मानते हQ और एक साथ दोनें धर्मों को न कह सकने से चतुथर् भंग™प से कथंचित् ‘अवाच्य’ भी मान लेते हQ सवर्था नहाR। सभी वस्त एँ व्यंजन पयार्य की अपेक्षा वाच्य हQ और अथर् पयार्य की अपेक्षा से अवाच्य हQ। अद्वैतवादी का कहना है कि द्रव्य एक है वही वास्तविक है, पयार्य्ों अनेक हQ वे अवास्तविक हQ। द्रव्य उन पयार्यें से भिVा है। सौगत का कहना है कि वणार्दिक™प अनेक पयार्यें हQ, वे ही वास्तविक हQ, किन्तु द्रव्य नाम की तो कोई चीज ही नहाR है। इस पर जैनाचार्यों का कहना है कि द्रव्य और पयार्यें म्ों कथंचित् एकत्व है क्येंकि उन दोनें को पृथक्-पृथक् करना अशक्य है। तथैव द्रव्य और पयार्यें म्ों कथंचित् भिVापना भी है क्येंकि दोनें का लक्षण भिVा है, प्रयोजन आदि से भी भिVाता है। द्रव्य का लक्षण सत् है, तो पयार्य का लक्षण है-उस-उस प्रतिविशि°™प से होना। सहभावी गुण होते हQ और ›âमभावी पयार्य्ों होती हQ। द्रव्य अनादि-अनंत एक स्वभाव है, पयार्य्ों सादि-सांत अनेक स्वभाव वाली हQ। फिर भी द्रव्य से निरपेक्ष केवल पयार्य्ों रह नहाR सकती और पयार्य निरपेक्ष द्रव्य का आfस्तत्व भी असंभव है। गुण और पयार्यें के समूह का नाम ही द्रव्य है अथवा उत्पाद, व्यय और धÇौव्य इन त्रयात्मक ही द्रव्य है। सप्तभंगी प्रि›âया- द्रव्य और पयार्यें का पृथक्-पृथक् विवेचन करना अशक्य होने से दोनें

म्ों कथंचित् एकत्व है। असाधारण™प स्वस्वलक्षण के भेद से कथंचित् दोनें म्ों नानापना सिद्ध है। ›âम से दोनें नयें की अपर्णा करने से द्रव्य और पयार्य्ों कथंचित् एकत्व भिVात्व™प उभयात्मक हQ। युगपत् दोनें नयें की अपर्णा करने से कहना ही अशक्य है अत: कथंचित् द्रव्य और पयार्य्ों दोनें अवक्तव्य हQ। भिVा-भिVा लक्षण और एक साथ दोनें नयें की अपर्णा करने से कथंचित् नानात्व अवक्तव्य है। दोनें का पृथक्-पृथक् अशक्य विवेचन होने से और एक साथ दोनें नयें की अपर्णा करने से द्रव्य-पयार्यें म्ों कथंचित् एकत्व अवक्तव्य है। ›âम से तथा अ›âम से आर्पित दोनें नयें से द्रव्य पयार्य कथंचित् नाना एकत्व अवक्तव्य™प है। इस प्रकार से द्रव्य और पयार्यें म्ों प्रमाण तथा नय से अविरुद्ध सप्तभंगी सुघटित है। N : श् (७३) (७४)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (७५) (७६) अथ पंचम: परिच्छेद: धमर्, धर्मी सवर्था आपेक्षिक या अनापेक्षिक ही नहाR है यद्यापेक्षिकसिद्धि: स्याV ा द्वयं व्यवति‰ते। अनापेक्षिकसिद्धौ च, न सामान्यविशेषता।।७३।। धमर् और धर्मी आपस म् ें, यदि आपेक्षिक सिद्ध कहW। एक दूसरे के अभाव से, दोनें ही तब न° हुए।। यदी परस्पर अनपेक्षा से, दोनें सिद्ध कहे जाते। तब सामान्य विशेष उभय भी, एक बिना नहिं रह सकते।।७३।। अन्वयाथर्- (यदि आपेक्षिकसिद्धि: स्यात् न द्वयं व्यवति‰ते) यदि सवर्था धमर्-धर्मी की परस्पर म् ें अपेक्षाकृत ही सिद्धि मानी जावे, तो दोनें ही सिद्ध नहाR हो सव् ेंâगे (अनापेक्षिकसिद्धौ च सामान्यविशेषता न) यदि सवर्था धमर्-धर्मी म् ें एक-दूसरे की अपेक्षा न करके ही सिद्धि मानी जावे, तो भी सामान्य और विशेष भाव नहाR बन सव् ेंâगे। कारिकाथर्- यदि धमर् और धर्मी की सिद्धि सवर्था अपेक्षाकृत ही मानी जाव् ें, तब तो इन दोनें की व्यवस्था ही नहाR बन सकेगी क्येंकि एक के द्वारा एक का विघात हो जावेगा। यदि दोनें की सिद्धि सवर्था अनापेक्षिक ही माने जावे, तब तो इस स्थिति म् ें सामान्य और विशेष भाव सिद्ध नहाR हो सव् ेंâगे। आपेक्षिक-अनापेक्षिक का उभय एवं अवाच्य एकांत से नहाR घटता विरोधाV ोभयैकात्म्यं, स्याद्वादन्यायविद्विष् ाम्। अवाच्यतैकान्तेÓप्युक्तिनार्वाच्यमिति युज्यते।।७४।। यदि आपेक्षिक सिद्धि अनापेक्षिक सिद्धी का ए ेक्य कहW। स्याद्वाद बिन नहाR घटेगा, चूँकि परस्पर वि®द्ध हQ।। इन दोनें का 'अवक्तव्य', एकांत™प से यदि मानें। तब तो 'अवक्तव्य' यह कहना, स्ववचन बाधित ही जानो।।७४।। अन्वयाथर्- (स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्) स्याद्वाद न्याय के बैरियें के आपेक्षिक-अनापेक्षिक इन दोनें का एकात्म्य भी नहाR बन सकता है क्येंकि दोनें म् ें परस्पर म् ें विरोध है (अवाच्यतैकांते आfप अवाच्यं इति उक्ति: न युज्यते) और यदि इन दोनें का अवाच्य एकांत ही स्वीकार किया जावे, तो भी नहाR बन सकता है क्येंकि 'अवाच्य' है यह कथन भी शक्य नहाR हो सकेगा। कारिकाथर्- स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियें के यहाँ एकांत से आपेक्षिक और अनापेक्षिक ™प उभयैकात्म्य भी सिद्ध नहाR होता है। क्येंकि परस्पर म् ें विरोध आता है। एकांत से अवाच्यता को ही मानने पर तो "अवाच्य" इस प्रकार से कथन भी नहाR बन सकता है। आपेक्षिक-अनापेक्षिक की अनेकांत व्यवस्था धमर्धर्म्यर्विनाभाव: सिद्धयत्यन्योÓन्यवीक्षया। न स्व™पं स्वतो ¢ितत्, कारकज्ञापका"वत्।।७५।। धमर् और धर्मी का आfविनाभाव™प संबंध सदा। आपस म् ें सापेक्ष कथंचित्, आपेक्षिक है कहलाता।। किन्तु धमर्-धर्मी दोनें का, निज स्व™प है स्वत: प्रसिद्ध। कारक-ज्ञापक अवयव सÂश, नहिं स्वभाव है आपेक्षिक।।७५।। अन्वयाथर्- (धमर्-धर्म्यर्विनाभाव: अन्योन्यवीक्षया सिद्धŸ ाति) धमर् और धर्मी म् ें आfविनाभाव है वह परस्पर म् ें एक-दूसरे की अपेक्षा से ही सिद्ध होता है (न स्व™पं, स्वतो हि एतत् कारकज्ञापका"वत्) किन्तु इन धमर्-धर्मी का स्व™प परस्पर

म्ें एक-दूसरे की अपेक्षा कृत् नहाR है वह स्व™प तो स्वत: ही सिद्ध है जैसे कि कारक के कत्तार्-कमर् आदि अवयव एवं ज्ञापक के बोध्य-बोधक आदि अवयव स्वत: सिद्ध हQ। कारिकाथर्- धमर् और धर्मी का आिवनाभाव ही परस्पर की अपेक्षा से सिद्ध होता है। किन्तु वह इनका स्व™प नहाR है। क्येंकि कारक और ज्ञापक के अंगें के समान यह स्व™प तो स्वत: ही सिद्ध है। ।।इति पंचम: परिच्छेद:।। N : श्

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) पंचम परिच्छेद का सार एकांत™प अपेक्षा-अनपेक्षा का खंडन और स्याद्वाद सिद्धि (कारिका ७३ से ७५ तक) बौद्ध का कहना है कि धमर् और धर्मी परस्पर म्ें एक-दूसरे की अपेक्षा से ही सिद्ध होते हQ। जैसे कि मध्यमा और अनामिका अंगुली। अत: ये धमर्-धर्मी कल्पित हQ, वास्तविक नहाR हQ क्येंकि ये निविर्कल्प ज्ञान म्ें प्रतिभासित नहाR होते हQ। ये तो निविर्कल्प के अनंतर होने वाले विकल्प ज्ञान से कल्पित किये गये हQ। योग का कहना है कि धमर् और धर्मी सवर्था अनापेक्षिक ही हQ-कदाचित् भी एक-दूसरे की अपेक्षा नहाR रखते हQ। इस पर जैनाचार्यों का कथन है कि धमर् और धर्मी का स्व™प स्वत: सिद्ध है, वह स्व™प तो एक-दूसरे की अपेक्षा नहाR रखता है किन्तु धमर् और धर्मी का आfविनाभाव परस्पर म्ें एक-दूसरे की अपेक्षा ही सिद्ध होता है। जैसे कारक के अंग कतार् और कमर् स्वत: सिद्ध हQ। कतार् का स्व™प कमर् की अपेक्षा नहाR रखता है अन्यथा कतार् के स्व™प का अभाव हो जाने से कमर् के स्व™प का भी अभाव हो जायेगा अत: कथंचित् ये दोनें आपेक्षिक सिद्ध नहाR हQ। उसी प्रकार योग इन दोनें को सवर्था अनापेक्षिक ही मानता है, सो भी ठीक नहाR है। कतार् का व्यवहार कमर् के व्यवहार की अपेक्षा अवश्य रखता है, क्येंकि कमर् के निश्चायपूवर्क ही कतार् जाना जाता है। जैसे- ज्ञानादि गुण धमर् हQ और जीव धर्मी है, ये धमर् और धर्मी अपने-अपने स्व™प से स्वत: सिद्ध हQ अत: परस्पर आपेक्षिक नहाR हQ। जीव का स्व™प चैतन्य है और ज्ञान का स्व™प जानना है। ये अपने-अपने स्व™प म्ें एक-दूसरे की अपेक्षा नहाR रखते हQ किन्तु धर्मी के बिना धमर् अथवा धमर् के बिना धर्मी नहाR रह सकते हQ अत: कथंचित् एक-दूसरे की अपेक्षा से भी सिद्ध होते हQ। स्याद्वाद प्रि›âया- कथंचित् धमर् और धर्मी आपेक्षिक सिद्ध हQ, क्येंकि एक-दूसरे के बिना नहाR रह सकते हQ। कथंचित् ये दोनें अनापेक्षिक सिद्ध हQ, क्येंकि इन दोनें का स्व™प स्वत: सिद्ध है। कथंचित् ये दोनें अनापेक्षिक दोनें ™प हQ। एक साथ दोनें अपेक्षाआW का कथन न हो सकने से कथंचित् ये अवक्तव्य हQ। ›âम से आपेक्षिक और युगपत् दोनें की विवक्षा होने से कथंचित् आपेक्षिक अवक्तव्य हQ। ›âम से अनापेक्षिक और युगपत् दोनें की विवक्षा से कथंचित् अनापेक्षिक अवक्तव्य हQ। ›âम से और युगपत् दोनें की विवक्षा होने से कथंचित् आपेक्षिक-अनापेक्षिक अवक्तव्य हQ। इस प्रकार से स्याद्वाद के द्वारा ही वस्तुतöव की सिद्धि होती है। N

: श् (७७) (७८)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (७९) (८०) अथ ष%0: परिच्छेद: सवर्था हेतु सिद्ध या आगम सिद्ध तòव बाधित है सिद्धं चेद्धेतुत: सवË न प्रत्यक्षादितो गति:। सिद्धं चेदागमात्सवË वि®द्धार्थमतान्यपि।। ७६।। यदी हेतु से सभी तòव की, सिद्धी मानी जाए सही। तब प्रत्यक्ष अनुमान आदि से, वस्तुस्थिति अ® ज्ञान नहाR।। यदि आगम से सभी तòव को, सच्चे सिद्ध कोई करते। तब वि®द्ध मत वाले आगम, से वि®द्ध मत सच हेंगे।।७६।। अन्वयाथर्- (हेतुत: सवË सिद्धं चेत् प्रत्यक्षादित: गति: न) यदि सभी तòव हेतु से सिद्ध हQ तब तो प्रत्यक्षादि प्रमाण से किसी वस्तु का ज्ञान नहाR हो सकेगा (आगमात् सवË सिद्धं चेत् वि®द्धार्थमतानि अfप) यदि आगम से सभी तòव सिद्ध माने जाव्ेंगे, तब तो वि®द्ध अथर् को कहने वाले आगम भी प्रमाण हो जाव्ेंगे। कारिकाथर्- यदि सभी तòव एकांत से हेतु से ही सिद्ध होते हQ तब तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणें से किसी तòव की सिद्धि नहाR हो सकेगी। यदि सभी तòव आगम से ही सिद्ध माने जाय्ेंगे, तब तो वि®द्ध अथर् के प्रतिपादन करने वाले मत भी आगम से सिद्ध हो जाव्ेंगे। हेतु के और आगम के उभय एवं अवाच्य भी सदोष हQ विरोधाVेभयैकात्म्यं, स्याद्वादन्यायविद्विषाम्। अवाच्यतैकान्तेÓप्युक्तिनार्वाच्यमिति युज्यते।।७७।। हेतू-आगम दोनें का, एकात्म्य बने नहिं परमत म्ें। स्याद्वाद विद्वेषी जन के, दिखे विरोध परस्पर म्ें।। यदि दोनें का 'अवक्तव्य' है, यह एकांत लिया जावे। तब तो 'अवक्तव्य' पर से भी, क्यें वक्तव्य किया जावे।।७७।। अन्वयाथर्- (स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न) स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियें के यहाँ हेतु और आगम के उभय का एकात्म्य भी नहाR हो सकता है (अवाच्यतैकांते अfप अवाच्यं इति उक्ति: न युज्यते) यदि इन उभय तòव को सवर्था अवाच्य कहा जाये, तो 'अवाच्य' यह कथन भी नहाR किया जा सकता है। कारिकाथर्- स्याद्वादन्याय के द्वेषी जनें के यहाँ हेतुवाद और आगमवाद™प उभयैकात्म्य भी नहाR बन सकता है क्येंकि परस्पर म्ें विरोध आता है तथा इन दोनें के अवक्तव्यैकांत को स्वीकार करने पर तो 'अवाच्य' इस प्रकार का शब्द प्रयोग भी नहाR किया जा सकता है। हेतु और आगम का अनेकांत वक्तयर्नाप्ते यद्धेतो: साध्यं तद्धेतुसाधितम्। आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात्साध्यमागमसाधितम्।। ७८।। वक्ता आप्त नहाR होने से, हेतू से जो सिद्ध हुआ। युक्तसिद्ध वह तòव सदा ही, हेतू साधित कहा गया।। वक्ता आप्त यही होवे तो, उनके वचनें से साधित। सभी तòव निबार्ध™प से, कहलाते आगम साधित।।७८।। अन्वयाथर्- (अनाप्ते वक्तरि हेतो: यत् साध्यं तत् हेतु साधितम्) यदि वक्ता आप्त नहाR है तब हेतु से जो साध्य है वह हेतु साधित कहलाता है (आप्ते वक्तरि तत् वाक्यात् साध्यं आगमसाधितं) यदि वक्ता आप्त है तब उनके वचनें से जो तòव सिद्ध होते हQ वे आगम साधित कहलाते हQ। कारिकाथर्- वक्ता के आप्त न होने पर जो हेतु से

साध्य होता है, वह हेतु साधित है और वक्ता जब आप्त होता है, तब उसके वाक्य से जो सिद्ध होता है, वह आगम साधित है। ।। इति ष%₀: परिच्छेद:।। N : श्

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) छठे परिच्छेद का सार ए◌ेकांतिक हेतुवाद और आगमवाद का खंडन तथा स्याद्वाद सिद्धि (कारिका ७६ से ७८ तक) बौद्ध हेतु से ही तǒवें की सिद्धि मानते हQ, बÇÿ◌ाद्वैतवादी आगम से ही परम बÇÿ◌ा को सिद्ध करते हQ। वैशेषिक तथा बौद्ध प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणें से ही तǒवें की सिद्धि मानते हQ। आचायर् इन सबका ›âम से खंडन करते हQ। बौद्ध- सभी उपेय तǒव हेतु से ही सिद्ध हQ प्रत्यक्ष से नहाR, क्येंकि जो युक्ति से घटित नहाR होता, उसे हम देखकर भी श्राद्धा नहाR करते हQ। जैन- आपके यहाँ हेतु को ही प्रमाण मानने से तो प्रत्यक्ष, आगम आदि सभी अप्रमाण हो जाव्◌ेंगे। पुन: अनुमान ज्ञान भी उत्पV◌ा नहाR हो सकेगा तथा शाŒ◌ा के उपदेश से भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहाR होगा और तब तो आपके बुद्ध भगवान भी अप्रमाण हो जाव्◌ेंगे, क्येंकि बुद्ध भगवान का ज्ञान हेतु से नहाR हो सकता है। बÇÿ◌ाद्वैतवादी- सभी तǒव आगम से ही सिद्ध हQ, क्येंकि अनुमान से सिद्ध भी वाक्य यदि आगम से बाधित है, तो वह अग्राा¢ है। जैसे-“बÇ◌ाÿ◌ाण को मदिरा पीना चाहिए, क्येंकि वह द्रव है, दूध के समान” यह कथन अनुमान से तो सिद्ध है किन्तु “बÇ◌ाÿ◌ाणो न सुरां पिबेत्” इत्यादि आगम से बाधित है और हमारे यहाँ परम बÇÿ◌ा भी तो आगम से ही सिद्ध है। जैन- इस प्रकार आगम को ही प्रमाण मानने पर तो आपके यहाँ अन्य लोगें द्वारा वि®द्ध अथर् को कहने वाले आगम भी प्रमाण हो जाव्◌ेंगे, क्येंकि आगम- आगम से तो सभी समान हQ। यदि आप अपने आगम को ही समीचीन कहो, तो उसकी समीचीनता का निणर्य भी तो युक्ति-हेतु से ही किया जायेगा। अत: आपका आगम भी तो हेतु सापेक्ष ही रहा अत: एकांत मान्यता ठीक नहाR है। वैशेषिक-सौगत- प्रत्यक्ष और अनुमान से ही तǒवें की सिद्धि होती है, आगम से नहाR। जैन- यह कथन भी सारहीन है, क्येंकि ग्राहें के संचार एवं चंद्रग्राहण आदि ज्योतिष शाŒ◌ा से ही सिद्ध हQ◌् अत: हेतु आगम, प्रत्यक्ष और अनुमान इन सभी से ही उपेय तǒव सिद्ध होते हQ। इन दोनें का निरपेक्ष उभयैकात्म्य भी श्रेयस्कर नहाR है तथा स्याद्वाद के अभाव म्◌ें अवाच्य तǒव कहना भी असंभव है। स्याद्वाद सिद्धि- वक्ता के आप्त न होने पर जो हेतु से सिद्ध होता है, वह हेतु साधित है एवं वक्ता जब आप्त होता है तब उसके वाक्य से जो सिद्ध होता है, वह आगम साधित है। ‘यो यत्र अवंचक: स तत्राप्त:’ जो जिस विषय म्◌ें अवंचक-आfवसंवादक है वह आप्त हQ, इससे भिV◌ा अनाप्त हQ। कथंचित् सभी वस्तुएँ हेतु से सिद्ध हQ, क्येंकि उनम्◌ें इन्द्रिय और आप्त वचन की अपेक्षा नहाR है। कथंचित् सभी आगम से सिद्ध हQ, क्येंकि इन्द्रिय और हेतु की अपेक्षा है। कथंचित् उभय™प हQ, क्येंकि ›âम से दोनें की विवक्षा है। कथंचित् अवक्तव्य हQ, क्येंकि युगपत् दोनें की विवक्षा है। कथंचित् हेतु से सिद्ध और अवक्तव्य हQ, क्येंकि ›âम से हेतु की और युगपत् दोनें की विवक्षा है। कथंचित् आगम से सिद्ध और अवक्तव्य हQ, क्येंकि ›âम से आगम

की और युगपत् दोनें की विवक्षा है। कथंचित् उभय™प और अवक्तव्य हQ, क्येंकि ›âम से दोनें की और युगपत् दोनें की विवक्षा है। भावाथर्- जैन सिद्धांत म्ें 'प्रमाणनयैरधिगम:' सूत्र के द्वारा प्रमाण और नयें से वस्तु तȯव को समझने का उपदेश दिया गया। प्रमाण के प्रत्यक्ष और परोक्ष की अपेक्षा दो भेद हQ। इन्द्रिय और मन से होने वाले ज्ञान को कहाR (न्याय ग्रांथेंम्ें) सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा है तथा स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तवर्क, अनुमान और आगम ये परोक्ष प्रमाण हQ। इन सभी के द्वारा वस्तु तȯव को ठीक से समझना चाहिए। N : श् (८१) (८२)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (८३) (८४) अथ सप्तम: परिच्छेद: सवर्था अंतरंग अथर् मानना सदोष है अन्तर”थर्तैकान्ते बुद्धिवाक्यं मृषाÓखिलम्। प्रमाणाभासमेवातस्तत् प्रमाणाÂते कथम्।।७९।। स्वसंविदित जो ज्ञान तत्व है, अन्तरंग यदि अथर् वही। तब बुद्धि-अनुमान-शाŒा सब, बा¢ वस्तु हQ मृषा सही।। अत: प्रमाणाभास हुये ये, अनुमान आगम चूंकि मृषा। बिन प्रमाण के कहाँ प्रमाणाभास बनेगा सभी सफा।। ७९।। अन्वयाथर्- (अंतर”थर्तैकांते आिखलं बुद्धिवाक्यं मृषा) यदि एकांत से अंतरंग अथर्™प ज्ञान तöव को ही माना जाये, तब तो सम्पूणर् बुद्धि™प अनुमान और वाक्य्™प आगम मिथ्या हो जाव्ंगे (अत: प्रमाणाभासं एव तत् प्रमाणात् त्र+ते कथं) इसी सेवे प्रमाणाभास हो जाव्ंगे पुन: प्रमाणाभास भी प्रमाण के बिना वैâसे संभव है ? कारिकाथर्- यदि अंतरंग-ज्ञान™प पदाथर् को ही वास्तविक मानकर उसका एकांत स्वीकार किया जावे, तब तो सभी बुद्धि-अनुमान और वाक्य-आगम मिथ्या ही हो जावेगा। अत: वे बुद्धि और वाक्य प्रमाणाभास ही सिद्ध हेंगे। पुन: वह प्रमाणाभास भी प्रमाण के बिना वैâसे सिद्ध हो सकेगा ? ज्ञान मात्र मानने से साध्य-साधन भी नहाR बन्ंगे साध्यसाधनविज्ञप्तेयर्दि विज्ञप्तिमात्रता। न साध्यं न च हेतुश्चा, प्रतिज्ञाहेतुदोषत:।।८०।। साध्य हेतु का ज्ञान यदी, बस ज्ञान मात्र माना जावे। तब तो साध्य नहाR होगा, हेतू Â°ांत नहाR हेंगे।। चूँकि ‘प्रतिज्ञादोष’ कहा जो, स्ववचन बाधित आवेगा। ‘हेतुदोष’ है आिसद्धादि ये, आते सब दूषित होगा।।८०।। अन्वयाथर्- (यदि साध्यसाधनविज्ञप्ते: विज्ञप्तिमात्रता) यदि साध्य और साधन के ज्ञान को ज्ञानमात्र ही माना जाये, तब तो (न साध्यं न च हेतु: च प्रतिज्ञाहेतुदोषत:) साध्य और हेतु ये दोनें नहाR बनते हQ एवं द्वितीय चकार से Â°ांत भी नहाR बनता है, क्येंकि एेसा कहने म्ं प्रतिज्ञा दोष और हेतु दोष उपस्थित होता है। कारिकाथर्- साध्य और साधन की विज्ञप्ति को यदि विज्ञान मात्र ही स्वीकार किया जावे, तब तो प्रतिज्ञा और हेतु के दोष से न साध्य ही सिद्ध होगा न हेतु एवं Â°ांत ही बन सव्ंâगे। भावाथर्- प्रतिज्ञा दोष अथार्त् स्ववचन विरोध होता है और हेतु दोष अथार्त् आिसद्ध, वि®द्ध, अनैकांतिक दोष आते हQ। साध्य सहित पक्ष के कहने को ‘प्रतिज्ञा’ एवं साधन के वचन को हेतु कहते हQ। विज्ञानाद्वैतवादी बौद्ध सभी तöवें को ज्ञान मात्र ही कहता है तब साध्य और साधन व्यवस्था वैâसे बनेगी ? सवर्था बहिरंग अथर् ही है एेसा कहना भी सदोष है बहिर”थर्तैकान्ते प्रमाणाभासनिन्हवात्। सर्वेषां कायर्सिद्धि:स्याद्वि®द्धाथार्Óभिधायिनाम्।।८१।। बा¢ अथर् को ही यदि मानें, चेतन का बस नाश हुआ। तभी प्रमाणाभास विपयर्य, संशय आदि समाप्त हुआ।। पुन: विरोधी कथनी वाले, सबके सभी विरोधी मत। सच्चे हो जाव्ंगे फिर तो, नहाR रहW मिथ्यात्वी जन।।८१।। अन्वयाथर्- (बहिर”थर्तैकांते प्रमाणाभासनिन्हवात्) यदि एकांत से बा¢ पदाथर् ही माने जाव्ं, अंतरंग ज्ञान तöव न माना जावे, तब तो इससे प्रमाणाभास का लोप हो

जावेगा (वि®द्धाथार्भिधायिनां सर्वेषां कायर्सिद्धिः स्यात्) तब तो वि®द्ध अथर् को कहने वाले सभी जनें के सभी कायर् सिद्ध हो जाव्ेंगे। कारिकाथर्- घट-पटादि बा¢ पदाथर् ही एकांत से हQ अंतरंग पदाथर् नहाR हQ, एेसी एकांत मान्यता म्ें तो संशयादि ™प प्रमाणाभास का निन्हव हो जाने से सभी वि®द्धाथर् को कहने वालें की भी कायर्सिद्धि हो जावेगी, क्येंकि बा¢ पदाथर् सभी सत्य™प ही हQ। अंतरंग और बहिरंग अथर् का उभय और अवाच्य भी सदोष हQ विरोधाV ोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्। अवाच्यतैकान्तेÓप्युक्तिनार्वाच्यमिति युज्यते।।८२।। अंतरंग बहिरंग ज्ञेय का, जो एेकांतिक 'एेक्य' कहा। स्याद्वाद विद्वेषी जन के, मत म्ें सदा विरोध रहा।। ज्ञान और बा¢थर् वस्तु को, यदी अवाच्य कहा जिसने। तब तो वचनें से 'अवाच्य' को, वैâसे वाच्य किया उसने।।८२।।

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (८५) (८६) अन्वयाथर्- (स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्) स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियें के यहाँ ज्ञान तꣳव और बा¢ तꣳव इन उभय का एकात्म्य भी नहाR हो सकता है क्येंकि इनका परस्पर म्ें विरोध है (अवाच्यतैकांते आfप अवाच्यं इति उक्ति: न युज्यते) यदि इन दोनें का सवर्था अवाच्य स्वीकार किया जावे, तब तो 'अवाच्य' यह कथन भी नहाR हो सकेगा। कारिकाथर्- स्याद्वादन्याय के विद्वेषियें के यहाँ एकान्त से इन दोनें का उभयैकात्म्य भी संभव नहाR है, क्येंकि परस्पर म्ें विरोध आता है एवं तत्व को अवाच्य ™प स्् कार करने पर तो "अवाच्य" यह शब्द भी नहाR कहा जा सकता है। ज्ञान पदाथर् और बा¢ पदाथर् दोनें ही सिद्ध हQ भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभासनिन्हव:। बहि:प्रमेयापेक्षायां प्रमाणं तिVाभं च ते।।८३।। भाव प्रमेयापेक्षा करके, नहाR प्रमाणाभास रहे। चूँकी ज्ञान स्व-स्व™प, संवेदन से हि प्रमाण कहे।। बा¢ पदाथर् प्रमेयापेक्षा, कहे प्रमाण, प्रमाणाभास। अत: नाथ! तव मत म्ें अंत:-बा¢ तꣳव दोनें विख्यात।।८३।। अन्वयाथर्- (ते भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभासनिन्हव:) हे भगवन्! आपके मत म्ें अंत: प्रमेय की अपेक्षा करने पर प्रमाणाभास का लोप हो जाता है (बहि: प्रमेयापेक्षायां प्रमाणं तिVाभं च) बा¢ पदार्थों के प्रमेय की अपेक्षा करने पर प्रमाण और प्रमाणाभास दोनें ही होते हQ। कारिकाथर्- हे भगवन्! आपके सिद्धान्त म्ें भाव-ज्ञान को प्रमेय™प से अपेक्षित करने पर प्रमाणाभास का लोप हो जाता है एवं बा¢ पदाथर् को प्रमेय ™प से अपेक्षित करने पर तो प्रमाण एवं प्रमाणाभास दोनें ही सिद्ध हो जाते हQ। भावाथर्- स्वसंवेदन ज्ञान की अपेक्षा से सभी ज्ञान प्रमाण हQ चाहे संशय आदि ही क्यें न हें क्येंकि सभी ज्ञान अपने-अपने स्व™प के द्योतक होने से अपने-अपने विषय म्ें प्रमाण ही हQ। वहाँ प्रमाणाभास का नाम ही नहाR है, किन्तु जब बा¢ पदार्थों को प्रमेय करते हQ तब प्रमाण और प्रमाणाभास दोनें ही व्यवस्थाएँ बन जाती हQ। जहाँ विसंवाद होता है अथवा बाधा आती है वहाँ प्रमाणाभास बनता है, किन्तु जहाँ विसंवाद न होकर निबार्धता रहती है वहाँ प्रमाण बनता है। इस प्रकार से प्रमाण-अप्रमाण की व्यवस्था म्ें कोई विरोध नहाR आता है। जीव शब्द बा¢ अथर् से सहित है जीवशब्द: सबा¢थर्: संज्ञात्वाद्धेतुशब्दवत्। मायादिभüान्तिसंज्ञाश्चा, मायाद्यै: स्वै: प्रमोक्तिवत्।।८४।। जीव शब्द निज बा¢ अथर् से, युक्त नित्य चैतन्य पु®ष। चूँकि संज्ञा™प कहा है जैसे हेतू शब्द सुलभ।। माया आदि शब्द दिखते हQ, भüांत™प फिर भी वे सब। ज्ञान शब्दवत् अपना-अपना, अथर् प्रगट करते संतत।।८४।। अन्वयाथर्- (जीवशब्द: सबा¢थर्: संज्ञात्वात् हेतुशब्दवत्) 'जीव' यह शब्द अपने बा¢ अथर् से युक्त है क्येंकि संज्ञा या नाम वाला है जैसे हेतु शब्द बा¢ अथर् के बिना नहाR होता है (मायादिभüांति संज्ञाश्चा स्वै: मायाद्यै: प्रमोक्तिवत्) माया आदि भüांत अथर्वाचक शब्द भी अपने-अपने माया आदि भüांत अथर् को लिए हुए ही होते हQ जैसे कि

प्रमाण शब्द अपने अथर् को लिए हुए होता है। कारिकाथर्- संज्ञा™प होने से ‘हेतु’ इस शब्द की तरह जीव यह शब्द भी जीव लक्षण अपने बा¢ अथर् से सहित हQ। जैसे प्रमाण वचन अपने अथर् से युक्त हQ तथैव मायादि, भü ांति शब्द अपने मायादि अर्थो से सहित हQ। संज्ञा ™प हेतु निर्दोष है बुद्धिशब्दाथर्संज्ञास्तास्तिœ ो बुद्ध ्यादिवाचिका:। तुल्या बुद्धŸ ादिबोधाश्चा, त्रयस्तत्प्रतिबिम्बका:।।८५।। बुद्धी, शब्द, अथर् ये तीनें, संज्ञा नाम कहे जाते। निज से पृथक् बुद्धि अ® शब्द, अथर् वस्तु को ये कहते।। अत: तुल्य है तथा नाम त्रय, के प्रतिबिम्बक भी तीनें। बुद्धि शब्द अ® अथर् ज्ञान ये, बा¢ वस्तु व्यंजक तीनें।।८५।। अन्वयाथर्- (बुद्धिशब्दाथर्संज्ञा: ता: तिœ ा: बुद्धŸ ादिवाचका:) बुद्धि, शब्द और अथर् ये तीनें नाम अपने से भिV ा बुद्धि, शब्द एवं अथर् ™प अपने वाच्य अथर् को कहते हQ (बुद्धŸ ादिबोधा: च तुल्या: त्रय: तत्प्रतिबिम्बका:) तथा जो बुद्धि शब्द और अथर्™प तीनें के ज्ञान हQ वे तुल्य हQ एवं ये तीनें ही बुद्धŸ ादि विषय के प्रतिबिम्बक हQ। कारिकाथर्- ज्ञान, शब्द एवं अथर् इन तीनें की संज्ञाएँ बुद्धि आदि पदाथर् को कहने वाली हQ। अत: वे तुल्य हQ तथा बुद्धि, शब्द और अथर् ™प ज्ञान हQ वे भी

तीनें बुद्धि आदि विषय के प्रतिबिम्बक हQ। भावाथर्- उच्चरित शब्द से जो निश्चित ज्ञान होता है वही उसका निजी अथर् है जैसे घट शब्द के उच्चारण से श्रोता को वंâबुग्रीवादि सहित घट पदाथर् का बोध होता है अत: घट शब्द का अथर् घट™प पदाथर् माना गया है। वैसे ही शब्द-शब्द से उसका बा¢ अथर् स्प° झलक जाता है। जीवाथर्क जीव शब्द, बुद्धि अथर्क जीव शब्द एवं नाम अथर्क जीव शब्द ये तीनें ही अपने से भिV ा अथर् ज्ञान एवं नाम™प तीन वाच्य अथर् को कहते हQ क्येंकि इनके प्रतिबिम्बक ज्ञान तीन ही होते हQ। इस प्रकार से एक जीव पदाथर् का ज्ञान नाम एवं अथर् ™प से प्रतिपादन करने वाली होने से इन संज्ञाआW म्ें समानता है एवं एक जीव को ही ज्ञान नाम एवं अथर् ™प संज्ञाआW म्ें दिखाने वाले होने से इनके प्रतिबिम्बक ज्ञानें म्ें समानता है। विज्ञानाद्वैतवादी का समाधान वक्तृâश्रोतृप्रमात ृणां बोधवाक्यप्रमा: पृथव्â। भü ान्तावेव प्रमाभü ान्तौ बा¢Óर्थौ ताÂशेतरौ।।८६।। वक्ता, श्रोता और प्रमाता, इनके ज्ञान अ® वाक्य प्रमाण। पृथक्-पृथक् हQ यदि ज्ञानादिक, भü ांत™प ही कहे तमाम।। प्रमा भü ांत होने से तो फिर, इ° आfन° पदाथर् सभी। तथा प्रमाण अ® अप्रमाण ये, भü ांत ™प हो जाएं सही।।८६।। अन्वयाथर्- (वक्तृâश्रोतृप्रमात ृणां बोधवाक्यप्रमा: पृथक्) वक्ता श्रोता और प्रमाता इन तीनें के ज्ञान, वाक्य और प्रमा पृथक्-पृथक् हQ (भü ांतै एव प्रमाभü ांतौ ब ¢र्थौ ताÂशेतरौ) यदि इनको भü ांत™प माना जावे, तो ज्ञान भी भü ांत™प हो जावेगा। प्रमाण और अप्रमाण एवं इ° आfन° पदाथर् भी भü ांत स्व™प ही हो जाव्ेंगे। कारिकाथर्- वक्ता, श्रोता एवं प्रमाता के बोध वाक्य एवं प्रमा ये शब्द भिV ा- भिV ा ही अवभासित होते हQ। यदि बोध, वाक्य और प्रमा को भü ांति™प ही माना जावे, तब तो प्रमाण भी भü ांत™प हो जायेगा, पुन: ताÂश भü ांत-अप्रमाण एवं इतर- अभü ांत-प्रमाण ™प वे इ° और आfन° बा¢ पदाथर् भी भü ांत ही मनाने पंाडWगे। ज्ञान और शब्द की प्रमाणता वैâसे है ? बुद्धिशब्दप्रमाणत्वं, बा¢र्थे सति नाÓसति। सत्यानृतव्यवस्थैवं, युज्यतेÓथार्प्त्यनाप्तिषु।।८७।। बा¢ पदाथर् के होने पर, ज्ञान अ® शब्द प्रमाण सही। बा¢ पदारथ नहिं होवे यदि, ज्ञान अ® शब्द प्रमाण नहाR।। अत: अथर् की प्राप्ती से ही, वस्तु व्यवस्था घटती है। किन्तु अथर् यदि प्राप्त न हो तब, मृषा व्यवस्था बनती है।। ८७।। अन्वयाथर्- (बा¢र्थे सति बुद्धि शब्दप्रमाणत्वं असति न) बा¢ पदाथर् के होने पर ही ज्ञान और शब्द म्ें प्रमाणता आती है और बा¢ अथर् के नहाR होने पर नहाR आती है (एवं अथार्प्त्यनाप्तिषु सत्यानृतव्यवस्था युज्यते) इसी प्रकार से बा¢ पदाथर् की प्राप्ति म्ें सत्य की व्यवस्था एवं प्राप्ति न होने म्ें असत्य की व्यवस्था बनती है। कारिकाथर्- बा¢ पदाथर् के होने पर बुद्धि-ज्ञान और शब्द को प्रमाणता है एवं बा¢थर् के नहाR होने पर उनको प्रमाण™पता नहाR है। इस प्रकार से अथर् की प्राप्ति और अप्राप्ति म्ें

सत्य एवं असत्य की व्यवस्था की जाती है। भावाथर्- विज्ञानाद्वैतवादी ज्ञान को ही प्रमाण मानता है। इस पर आचायर् कहते हQ कि बा¢ पदार्थों को माने बिना ज्ञान म्ें प्रमाणता-अप्रमाणता की व्यवस्था नहाR बन सकती है। अंतर्ज्ञेय ™प ज्ञान को ही प्रमेय करने की अपेक्षा रखने पर तो सम्यग्ज्ञान एवं मिथ्याज्ञान सब म्ें प्रमाणता होती है क्येंकि संशय, विपयर्य, अनध्यवसाय ™प मिथ्याज्ञान भी अपने-अपने स्व™प को जैसे का तैसा कहते हQ अत: स्व™प ज्ञान की अपेक्षा सभी ज्ञान प्रमाण ही हQ किन्तु जब ज्ञान म्ें प्रमाणता की कसौटी करनी होती है तब उस ज्ञान के द्वारा जाने गये पदार्थों की ओर Âि° डालनी पोडती है। यदि ज्ञान का विषयभूत पदाथर् जिस ™प से ज्ञान से जाना गया है। वैसा ही दिख रहा है तब तो वह ज्ञान सत्य माना जाता है। यदि उस ™प से नहाR दिख रहा है। तब वह ज्ञान असत्य माना जाता है। इसलिए ज्ञान म्ें प्रमाणता और अप्रमाणता बा¢थर् के होने पर ही आती है अन्यथा नहाR। वैसे ही शब्द म्ें प्रमाणता और अप्रमाणता भी बा¢ अथर् के होने पर ही आती है अन्यथा नहाR, क्येंकि स्वपक्ष साधन और परपक्ष दूषण शब्द बिना एवं बा¢ अथर् के बिना नहाR बन सकते हQ। इसलिए बा¢ अथर् वास्तविक हQ, एेसा मानना चाहिए। ।।इति सप्तम: परिच्छेद:।। N : श्

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) सातव्ें परिच्छेद का सार अंतरंगाथर् एवं बहिरंगाथर् के एकांत का खंडन एवं स्याद्वाद सिद्धि (कारिका ७९ से ८७ तक) विज्ञानाद्वैतवादी बौद्ध कहता है कि अंतरंगाथर् विज्ञान मात्र ही एक तòव है किन्तु दिखने वाले बहिरंग पदाथर् कुछ भी नहाR हQ ये तो कल्पना मात्र हQ। ये सब बा¢ पदाथर् इंद्रजालिया के खेल के समान हQ अथवा स्वप्न के राज्य समान हQ। इस पर जैनाचार्यों का कहना है कि आपकी इस एकांत मान्यता से तो हेतु और आगम से सिद्ध मोक्ष तòव एवं अनुमान, आगम आदि सभी प्रमाण आदि मिथ्या हो जाय्ेंगे तथा बा¢ पदाथर् भी प्रत्यक्ष म्ें जो दिख रहे हQ वे सवर्था काल्पनिक नहाR है अन्यथा नर-नारकादि पयार्य्ें और उनके निमित्त से होने वाले सुख-दु:ख भी काल्पनिक ही कहे जाय्ेंगे और तब संसार भी काल्पनिक ही सिद्ध होगा। इस व्यवस्था से तो आपके बुद्ध भगवान काल्पनिक कहने पर तो मोक्ष भी काल्पनिक एवं आपका मत भी काल्पनिक ही हो जायेगा। कोई बा¢ पदाथर्वादी है- जितने भी बा¢ पदाथर् हQ वे सब ज्ञान से संबंधित हQ क्येंकि ज्ञान विषयाकार होता है। अत: बा¢ पदाथर् ही वास्तविक हQ ज्ञान स्वतंत्र कोई चीज नहाR है। इस पर जैनाचार्यों का कहना है कि यदि आप सभी पदार्थों को ज्ञान से संबंधित मान्ेंगे तब तो प्रमाण और प्रमाणाभास दोनें ही खत्म हो जाय्ेंगे। तृण के अग्रा भाग पर सौ हाथी बैठे हQ। इत्यादि ऊटपटांग वाक्यें का ज्ञान एवं स्वप्न का ज्ञान अपने-अपने पदाथर् से संबंधित नहाR है क्येंकि इन ज्ञानें म्ें विसंवाद देखा जाता है। इन अंतरंग-ज्ञानतòव और बहिरंग-बा¢ पदाथर् को परस्पर निरपेक्ष मानने वाले उभयैकात्म्यवादी का सिद्धांत भी वि®द्ध ही है। उसी प्रकार दोनें तòवें को एकांत से अवाच्य मानना भी अघटित ही है। स्याद्वाद की अपेक्षा अंतरंग और बहिरंग दोनें ही तòव वास्तविक हQ। सभी ज्ञान स्व™प संवेदन की अपेक्षा से एवं सòव प्रमेयत्वादि की अपेक्षा से प्रमाण™प ही हQ् अतएव अंत: प्रमेय की अपेक्षा से प्रमाणाभास कुछ भी नहाR है किन्तु जब बहि: प्रमेय-बा¢ पदार्थों को प्रमेय करते हQ, तब ज्ञान म्ें प्रमाण और प्रमाणाभास दोनें ही सिद्ध हो जाते हQ इसलिए अंतस्तत्व और बहिस्तत्व दोनें ही सिद्ध हQ। जीव के आfस्तत्व की सिद्धि चावार्क- जीव अपने स्व™प से रहित है, वह शरीर इन्द्रिय आदि के समूह ™प ही है। जन्म के पूवर् और मरण के अनंतर चैतन्य नामक कोई तòव नहाR है अत: अनादिनिधन कोई आत्मा नहाR है। चैतन्य भी सत् है और भूतचतु॰य भी सत् है। सत् ™प से दोनें समन्वित हQ अत: जीव भूतचतु॰य से उत्पVा होता है किन्तु भूतचतु॰य तो परस्पर म्ें भिVा-भिVा हQ। उन चारें म्ें एक विकारी समन्वय नहाR है अथार्त् पृथ्वी, जल, आfग्न और वायु ये चारें तòव भिVा-भिVा ही हQ। जैनाचायर्- यह आपका कथन सवर्था असत् है। जीव गया, जीव विद्यमान है, इत्यादि ™प से यह जीव शब्द लोकव्यवहार का आश्राय लेता है। यह व्यवहार शरीर, इन्द्रिय आदि म्ें नहाR हो सकता है। वैसे ही जन्म से पहले

और मरण के अनंतर भी चैतन्य का आस्तित्व सिद्ध है, किसी को जातिस्मरण होता हुआ देखा जाता है, बालक माता का स्तनपान करता है इत्यादि बात्ें भी संस्कार से मानी जाती हQ। आपने जो भूतचतुष्य से चैतन्य की उत्पत्ति मानी है, वह भी सवर्था गलत है क्येंकि अचेतन से चेतन की उत्पत्ति होना असंभव है तथा ये चारें भूतचतुष्य परस्पर म्ें सजातीय होने से एक-दूसरे ™प भी परिणत हो सकते हQ इसलिए ये सवर्था भिVा-भिVा भी नहाR हQ। चंद्रकांत मणि ™प पृथ्वी से जल की उत्पत्ति, सूयर्कांत से आग्नि की उत्पत्ति आदि तथा जलबिन्दु से सीप म्ें मोती की उत्पत्ति आदि देखी जाती है अत: अनादिनिधन जीव तòव सिद्ध है वह ज्ञान दर्शन उपयोग स्वभाव वाला है। एेसे ही सांख्य जीव को वूâटस्थ नित्य अपरिणामी ज्ञान शून्य मानते हQ। वे ज्ञान को प्रकृति (जाड) का धमर् मानते हQ। योग जीव को स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा नहाR जानने योग्य-अस्वसंविदित मानते हQ। बÇý्ावादी कहते हQ कि सभी शरीर म्ें एक आिभVा ™प (परमबÇý्ा) जीवात्मा है। बौद्ध आत्मा को प्रतिक्षण भिVा-भिVा ही मानते हQ। इन सब के द्वारा जीव शब्द बा¢थर् सहित नहाR है क्येंकि यह सब मान्यता केवल कपोलकल्पित ही है। इस प्रकार जीव तòव की सिद्धि हो जाने से अंतरंग तòव सिद्ध हो जाता (८९)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (९१) (९२) अथ अ॰म: परिच्छेद: क्या भाग्य से ही सभी कायर् सिद्ध हो सकते हQ ? दैवादेवाथर्सिद्धिश्चेद्दैवं पौ®षत: कथम्। दैवतश्चेदनिर्मोक्ष: पौ®षं निष्फलं भवेत्।।८८।। यदी भाग्य से सभी कायर् की, सिद्धि मान लिया तब तो। पु®षारथ से भाग्य™प यह, कायर् बना यह कहना क्यें।। यदी भाग्य यह पूवर्-पूवर् के, भाग्यें से ही बन जाता। तब तो मोक्ष नहाR किसको भी, पौ®ष भी निष्फल होगा।।८८।। अन्वयाथर्- (चेत् दैवात् एव अथर्सिद्धि: पौ®षत: दैवं कथं) यदि एकांत से भाग्य से ही सभी कार्यों की सिद्धि हो जाती है तब पु®ष के व्यापार™प पु®षाथर् द्वारा भाग्य का निमार्ण वैâसे होता है ? (दैवत: चेत् आfनर्मोक्ष: पौ®षं निष्फलं भवेत्) यदि पूवर् के भाग्य से भाग्य बनता है, तब तो कभी भी किसी को मोक्ष नहाR हो सकेगी क्येंकि पूवर्-पूवर् के भाग्य से भाग्य का निमार्ण होता ही रहेगा और मोक्ष का अभाव मानने से तो पु®षाथर् निष्फल ही हो जावेगा। कारिकाथर्- यदि दैव-भाग्य से ही अथर्-प्रयोजन की सिद्धि मानी जाये, तब तो वह दैव पौ®ष से पु®ष के व्यापार से वैâसे सिद्ध होगा ? यदि ए ेसा कहो कि उस दैव की सिद्धि भी दैव से ही होती है, तब तो मोक्ष भी कभी नहाR हो सकेगा अत: उस मोक्ष का अभाव हो जावेगा एवं मोक्ष के कारण™प से स्वीकृत पौ®ष-पु®षाथर् भी निष्फल हो जावेगा। क्या एकांत से पु®षाथर् से ही कायर् सिद्ध होते हQ ? पौ®षादेव सिद्धिश्चेत् पौ®षं दैवत: कथम्? पौ®षाच्चेदमोघं स्यात्, सवर्प्राणिषु पौ®षम्।।८९।। यदि पु®षाथर् अकेले से ही, सभी कायर् की सिद्धि कहो। तब तो भाग्य उदय से यह, पु®षारथ वैâसे बना अहो!।। यदि पु®षाथर् स्वयं पौ®ष से, होता तब तो सब जन के। सभी कायर् की सिद्धी होगी, चूंकि सभी म ें पौ®ष है।।८९।। अन्वयाथर्- (चेत् पौ®षात् एव सिद्धि: दैवत: पौ®षं कथं) यदि पु®षाथर् से ही सम्पूणर् कार्यों की सिद्धि मानी जाये, तो भाग्य से पु®षाथर् वैâसे माना जावेगा? है। उसी प्रकार से बा¢ पदाथर् भी परमाथर् सत्य है क्येंकि साधन और दूषण का प्रयोग देखा जाता है। बा¢ पदाथर् के होने पर ही ज्ञान एवं शब्द प्रमाण™प हQ, बा¢ पदाथर् के अभाव म ें प्रमाणभूत नहाR हQ। इस प्रकार से अथर् की प्राप्ति और अप्राप्ति से ही सत्य और असत्य की व्यवस्था हो जाती है। भावाथर्- जीव तǒव वास्तविक है अन्यथा 'न जीव: अजीव:' इस नियम से अजीव का आfस्तत्व ही समाप्त हो जावेगा तथा जीव के बिना बा¢ पदार्थों को बतलाने वाला भी कोई नहाR रहेगा अत: जीव तǒव की निबार्ध सिद्धि हो जाने से बा¢ पदाथर् भी निबार्ध™प से सिद्ध हो जाते हQ। N : श्

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (९३) (९४) (पौ®षात् चेत् अमोघं स्यात् सवर्प्राणिषु पौ®षं) यदि कहो कि पु®षाथर् से ही पु®षाथर् बनता है तब तो सभी के कायर् सिद्ध हो जाव्ें गे, क्येंकि पु®षाथर् तो सभी प्राणियें म्ें पाया जाता है। कारिकाथर्- यदि केवल पु®षाथर् से ही अथर् की सिद्धि मानी जावे, तब तो दैव से पु®षाथर् देखा जाता है, वह वैâसे घटेगा? यदि कहो कि पु®षाथर् भी पु®षाथर् से ही उत्पVा होता है पुन: किये गये सभी कायर् सफल होने चाहिए, क्येंकि पु®षाथर् तो सभी प्राणियें म्ें पाया जाता है। भाग्य-पु®षाथर् के उभय एवं अवाच्य का खंडन विरोधाVोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्। अवाच्यतैकान्तेÓप्युक्तिनार्वाच्यमिति युज्यते।।९०।। भाग्य और पु®षाथर् उभय का, एेक्य नहाR है आपस म्ें। चूँकि विरोधी हQ ये दोनें, स्याद्वाद नय द्वेषी के।। यदि इन दोनें की 'अवाच्यता', कहो सवर्था की विधि से। तब तो वचनें से 'अवाच्य' इस, पद को वाच्य किया वैâसे?।।९०।। अन्वयाथर्- (स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्) स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियें के यहाँ भाग्य और पु®षाथर् इन दोनें का एकात्म्य भी संभव नहाR है क्येंकि दोनें का परस्पर म्ें विरोध है (अवाच्यतैकांते आिप अवाच्यं इति उक्ति: >� युज्यते) यदि अवाच्यता का एकांत माना जाता है तो 'ये दोनें तोव अवाच्य हQ" एेसा कहना भी असंभव हो जाता है। कारिकाथर्- स्याद्वाद न्याय के बैरियें के यहाँ उभय एेकात्म्य भी नहाR हQ अथार्त् पृथक् कायर् की अपेक्षा से दैव एवं पौ®ष के एकात्म्य को मीमांसक ने माना है वह भी सिद्ध नहाR है, क्येंकि परस्पर म्ें विरोध आता है। एकांत से अवाच्यता के मानने पर 'अवाच्य' यह उक्ति ही असंभव है। भाग्य और पु®षाथर् का अनेकांत अबुद्धिपूवार्Óपेक्षाया-मि°�नि°� स्वदैवत:। बुद्धिपूवर्व्यपेक्षायामि°�नि°� स्वपौ®षात्।।९१।। बिना विचारे अनायास ही, इ° आिन° कायर् कोई। जब बन जावे तब समझो तुम, भाग्य प्रधान हमारा ही।। बुद्धीपूवर्क यदि प्रयत्न से, इ° आिन° कायर् बनते। तब तो निज के पु®षाथर् को, मुख्य भाग्य को गौण कहW।।९१।। अन्वयाथर्- (अबुद्धिपूवार्पेक्षायां इ°�नि°� स्वदैवत:) बुद्धि व्यापार की अपेक्षा रखे बिना अनायास ही जो इ°-आिन° कायर् सिद्ध हो जाते हQ वे अपने-अपने भाग्य से सिद्ध होते हQ। (बुद्धिपूवर्व्यपेक्षायां इ°�नि°� स्वपौ®षात्) एवं बुद्धिपूवर्क की अपेक्षा करके जो इ°-आिन° कायर् सिद्ध होते हQ वे पु®षाथर्कृत हQ। कारिकाथर्- अबुद्धिपूवर्क की अपेक्षा म्ें जो इ° एवं आिन° कायर् होते हQ वे स्वभाग्य से होते हQ एवं बुद्धिपूवर्क की अपेक्षा करने पर सभी इ°, आिन° कायर् अपने पु®षाथर् से होते हQ। भावाथर्- ये भाग्य और पु®षाथर् सदैव एक-दूसरे की अपेक्षा रखकर होते हQ भाग्य के बिना अकेला पु®षाथर् एवं पु®षाथर् के बिना अकेला भाग्य असंभव है। जब कोई भी कायर् बिना प्रयास के सफल होते हQ तब भाग्य की प्रधानता और

पु®षाथर् गौण है एवं जब कोई भी कायर् प्रयत्नपूवर्क सिद्ध होते हQ तब पु®षाथर् प्रधान है भाग्य गौण है। ।।इति

अ०म: परिच्छेद:।। N : श्

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) आठव्ें परिच्छेद का सार दैव और पु®षाथर् के एकांत का खंडन एवं स्याद्वाद की सिद्धि (कारिका ८८ से ९१ तक) कोई मीमांसक भाग्य से ही सभी कार्यों की सिद्धि मानते हQ। चावार्क पु®षाथर् से ही सभी कार्यों की सिद्धि कहते हQं। कोई विशेष मीमांसक स्वगार्दि को भाग्य से एवं कृषि आदि को पु®षाथर् से मानते हQ और कोईर् बौद्ध लोग कार्यों की सिद्धि म्ें इन दोनें को भी न मानकर अवक्तव्य से ही सिद्धि मानते हQ। यहाँ सबसे प्रथम भाग्येकांत पक्ष का निराकरण करते हQ- मीमांसक- सभी कायर् भाग्य से ही सिद्ध होते हQ पु®षाथर् कुछ नहाR कर सकता है। जैन- तब तो पुण्य और पाप™प आचरण के द्वारा भाग्य का निमार्ण वैâसे होता है ? मीमांसक- पूवर्-पूवर् के भाग्य से ही आगे-आगे के भाग्य का निमार्ण होता है >न कि पुण्य-पाप आदि आचरणें से। जैन- तब तो इस प्रिâया से पूवर्-पूवर् के भाग्य से आगे-आगे के भाग्य का निमार्ण होते रहने से भाग्य का अभाव कभी भी नहाR हो सकेगा और तब तो मा ोक्ष कभी नहाR हो सकेगी तथा मोक्ष के लिए किये गये पु®षाथर् भी व्यथर् हो जाव Wगे ? मीमांसक- पु®षाथर् से भाग्य का निर्मूल नाश हो जाता है इसलिए मोक्ष की सिद्धि और उसके पु®षाथर् सफल हQ। जैन- तब आपने भी पु®षाथर् को तो मान ही लिया, पुन: भाग्य का एकांत कहाँ रहा ? पु®षाथर् एकांतवाद का निराकरण चावार्क- सभी कायर् पु®षाथर् से ही सिद्ध होते हQ। जैन- यह भी एकांत ठीक नहाR है, क्येंकि एक साथ अनेकें जन खेती करते हQ किन्तु किसी को विशेष लाभ और किसी को हानि भी होती हुई देखी जाती है किन्तु पु®षाथर् तो सभी के समान हQ पुन: एेसा अन्तर क्यें है ? इसलिए एकांत से पु®षाथर् से ही कायर् की सिद्धि मानना गलत है। कोई-कोई दैव-पु®षाथर् को मान करके भी दोनें को परस्पर निरपेक्ष मानते हQ, सो भी ठीक नहाR है। एकांत से अवक्तव्य मानने पर भी स्ववचन विरोध आता है। अतएव स्याद्वाद की पद्धति से वस्तु तòव की सिद्धि होती है- “अबुद्धिपूवार्पेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवत:। बुद्धिपूवर्व्यपेक्षायामिष्टानिष्टं स्वपौ®षात्”।।९१।। बिना बिचारे अनायास ही जब अनुवूâल अथवा प्रतिवूâल कायर् सिद्ध हो जाते हQ तब उनम्ें भाग्य की प्रधानता है और जब बुद्धिपूवर्क अनुवूâल या प्रतिवूâल कार्यों की सिद्धि होती है तब उनम्ें पु®षाथर् की प्रधानता है। ये भाग्य और पु®षाथर् एक-दूसरे की अपेक्षा रखने वाले होने से ही सम्यक् कहलाते हQ अन्यथा परस्पर निरपेक्ष होने से मिथ्या एकांत™प हो जाते हQ अत: ये दोनें सापेक्ष ही कार्यों की सिद्धि म्ें समथर् होते हQ, एेसा समझना। सप्तभंगी की प्रिâया- (१) कथंचित् सभी कायर् दैवकृत होते हQ, क्येंकि अनायास ही सिद्ध हुए हQ। (२) कथंचित् सभी कायर् पु®षाथर्कृत होते हQ, क्येंकि बुद्धिपूवर्क प्रयत्न से सिद्ध हुए हQ। (३) कथंचित् सभी कायर् भाग्य और पु®षाथर् दोनें कृत हQ, क्येंकि दोनें की विवक्षा है। (४) कथंचित् सभी कायर् अवक्तव्य हQ, क्येंकि इन दोनें को एक साथ कह नहाR सकते हQ। (५) कथंचित् दैवकृत

और अवक्तव्य हQ, क्येंकि ›☐âम से दैव की युगपत् दोनें की विवक्षा है। (६) कथंचित् सभी कायर् पु®षाथर्कृत और अवक्तव्य हQ, क्येंकि ›☐âम से पु®षाथर् की और युगपत् दोनें की विवक्षा है। (७) कथंचित् सभी कायर् दैव और पु®षाथर्कृत अवक्तव्य हQ, क्येंकि ›☐âम से दोनें की और युगपत् दोनें की विवक्षा है। इस प्रकार स्याद्वाद की अपेक्षा से भाग्य और पु®षाथर् दोनें ही सापेक्ष होकर कायर् साधक होते हQ अन्यथा नहाR, एेसा समझना चाहिए। N : श् (९५) (९६)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) (९७) (९८) अथ नवम: परिच्छेद: क्या पर को सुख-दु:ख देने से ही पुण्य-पाप बंध निश्चित है ? पापं धुÇ्वं परे दु:खात् पुण्यं च सुखतो यदि। अचेतनाÓकषायौ च, बध्येयातां निमित्तत:।।९२।। यदि पर को दु:ख देने से ही, पाप बंध सुख से हो पुण्य। वंâटक आदि अचेतन को तब, पाप बंध हो पय १ को पुण्य।। यदि चेतन नहिं बंधते है तब, अकषायी मुनि गतरागी। जन को सुख-दु:ख के निमित्त से, पुण्य-पाप के हें भागी।। ९२।। अन्वयाथर्- (यदि परे दु:खात् पापं धÇ्ुवं सुखत: च पुण्यं) यदि पर को दु:ख देने से निश्चित ही पाप का बंध होता है और पर को सुख देने से पुण्य बंध होता है (अचेतनाकषायौ च निमित्तत: बध्येयातां) तब तो अचेतन और कषाय रहित भी निमित्त से बंध जाव्ोंगे। कारिकाथर्- यदि दूसरे प्राणी म्ों दु:ख उत्पVा करने से एकांतत: पाप का बंध तथा सुख देने से पुण्य का बंध माना जायेगा, तब तो अचेतन पदाथर् एवं वीतरागी भी निमित्त से पुण्य-पाप ™प बंध को प्राप्त हो जाव्ोंगे। क्या स्वयं म्ों दु:ख-सुख से पुण्य-पाप होता है ? पुण्यं धÇ्ुवं स्वतो दु:खात् पापं च सुखतो यदि। वीतरागो मुनिविद्वांस्ताभ्यां युÀयािVामित्तत:।।९३।। यदि अपने को दु:ख देने से, पुण्य बंध सुख से हो पाप। तब तो वीतराग मुनि निज म्ों, कायक्लेश से सहते ताप।। मुनि विद्वान् तŸव को समझ्ों, संतोषामृत सुख भोगी। ये दोनें फिर पुण्य-पाप से, बंधे मुक्ति किसको होगी।।९३।। अन्वयाथर्- (यदि स्वत: दु:खात् धÇ्ुवं पुण्यं सुखत: च पापं) यदि स्वयं म्ों दु:ख उत्पVा करने से निश्चित ही पुण्य का बंध एवं स्वयं को सुख देने से पाप का बंध होता है तब तो (वीतरागो विद्वान् मुनि: निमित्तत: ताभ्यां युंज्यात्) कषाय रहित वीतराग मुनि और विद्वान् मुनिजन भी पुण्य-पाप का बंध करने लग्ोंगे क्येंकि ये भी अपने सुख-दु:ख की उत्पत्ति म्ों निमित्त कारण होते हQ। कारिकाथर्- यदि अपने आप म्ों दु:ख को उत्पVा करने से एकांत से पुण्य बंध एवं सुख उत्पादन करने से पाप बंध माना जावे, तो वीतराग एवं विद्वान् मुनि भी निमित्त से पुण्य, पाप से बंध जाने चाहिए। पुण्य-पाप का उभय एवं अवक्तव्य भी एकांत से सदोष है विरोधाVोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्। अवाच्यतैकान्तेÓप्युक्तिनार्वाच्यमिति युज्यते।।९४।। पुण्य-पाप के बध्ंा, उभय का, यदि एकात्म्य लिया जावे। स्याद्वाद विद्वेषी जन म्ों, सदा विरोधि रहा आवे।। यदि दोनें की 'अवक्तव्यता', कहो सदा एकांत सही। तब तो 'अवक्तव्य' इस वच से, स्वमत कथन यह शक्य नहाR।।९४।। अन्वयाथर्- (स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्) स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियें के यहाँ इन पुण्य-पाप™प दोनें सिद्धांतें का एकात्म्य भी नहाR है क्येंकि परस्पर म्ों विरोध आता है (अवाच्यतैकांते आfप अवाच्यं इति उक्ति: न युज्यते) यदि दोनें को अवाच्य ही एकांत से कहा जाये, तो यह पुण्य-पाप बंध अवाच्य है यह कथन भी अशक्य हो जावेगा। कारिकाथर्- स्याद्वादविद्वेषी के यहाँ उभयैकात्म्य भी ठीक नहाR हQ, क्येंकि परस्पर म्ों विरोध आता है। सवर्था

'अवाच्य' तòव को स्वीकार करने पर तो 'अवाच्य' यह कथन भी नहाR बन सकेगा। पुन: पुण्य-पाप का बंध वैâसे होता है ? विशुद्धिसंक्लेशा''ङ्ग चेत् स्वपरस्थं सुखाÓसुखम्। पुण्यपापाœावौ युक्तौ न चेद्व्यथर्स्तवाÓर्हत:।।९५।। यदी स्व-पर का सुख उनके, परिणाम विशुद्धी म्ों हेतू। तथा स्व-पर का दु:ख उनके, संक्लेश भाव म्ों यदि हेतू।। तब ये सुख-दु:ख पुण्य-पाप के, आœाव म्ों हेतू बनते। यदि एोसा नहिं तब तो अर्हन्! तव मत म्ों यह व्यथर् कहे।।९५।। अन्वयाथर्- (चेत् स्वपरस्थं सुखासुखं विशुद्धिसंक्लेशां''ङ्ग) यदि स्वपर को होने वाला सुख और दु:ख विशुद्धि और संक्लेश के कारण है (पुण्यपापाœावौ युक्तौ न चेत् तव अर्हत: व्यथर्:) तब तो उनसे पुण्य और पाप का आœाव होना युक्त है। यदि वे सुख-दु:ख विशुद्धि और संक्लेश के कारण नहाR है तब तो अर्हन् भगवन्! वे व्यथर् ही हQ। १. दूध

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) कारिकाथर्- यदि अपने सुख-दु:ख एवं परसंबंधी सुख, दु:ख विशुद्धि एवं संक्लेश के निमित्त से होते हQ तब तो उनसे ही पुण्य और पाप का आœाव होना युक्त ही है। यदि विशुद्धि और संक्लेश ™प परिणाम नहाR है, तब तो वे व्यथर् ही हQ अथार्त् पुण्य, पाप का आœाव हो ही नहाR सकता है, एेसा आप अर्हत्प्रभु का सिद्धान्त है। ।।इति नवम: परिच्छेद:।। N : श् नवम्ें परिच्छेद का सार पुण्य और पाप के एकांत का निराकरण एवं स्याद्वाद की सिद्धि (कारिका ९२ से ९५ तक) भाग्य दो प्रकार का है-एक पुण्य और दूसरा पाप। वही प्राणियें के सुख और दु:ख का कारण है। "सद्वेद्यशुभायुनार्मगोत्राणि पुण्यं, इतरत्पापं" सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और उच्च गोत्र, ये पुण्य ™प हQ और इनसे विपरीत असातावेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम और नीच गोत्र तथा चारें घातिया कमर्, ये पाप™प हQ। कोई एकान्त से कहता है कि पर जीवें म्ें दु:ख उत्पVा करने से पाप एवं पर म्ें सुख उत्पVा करने से पुण्य ही होता है। तो आचायर् कहते हQ कि यह कहना ठीक नहाR है क्येंकि इस प्रकार की मान्यता से तो अचेतन दूध, घी आदि पदाथर् अन्य जीवें को सुख उत्पVा करते हQ इसलिए उनके पुण्यबंध मानना पाडेगा और विष, वंâटक आदि पदाथर् दु:ख उत्पVा करते हQ, उनके पाप बंध मानना पाडेगा। यदि आप कहW कि चेतन ही बंध के योग्य हQ, अचेतन नहाR तो भी वीतरागी मुनिराज के पर के सुख-दु:ख के निमित्त से कर्मों का बंध होने लगेगा, अथार्त् कोई महामुनि ध्यान म्ें लीन हQ उन्हW देखकर भक्तजन प्रसVा हो जाते हQ और अज्ञानीजन निंदा करते हQ, उनसे दु:ख अनुभव करते हQ एतावता ये परजीवें के सुख-दु:ख म्ें निमित्त तो हो रहे हQ किन्तु स्वयं वीतरागी हQ इनके भी कमर्बंध मानना पाडेगा। यदि आप कहW कि उन मुनिराज का वैसा सुख-दु:ख देने का मानो आfभप्राय नहाR है, तब तो पर म्ें सुख-दु:ख करने से ही पुण्य बंध होता है, एेसा आपका एकान्त कहाँ रहा ? इससे विपरीत कोई कहता है कि अपने म्ें दु:ख को उत्पVा करने से पुण्य एवं सुख को उत्पVा करने से पाप बंध ही होता है। इस पर भी आचायर् कहते हQ कि एेसा एकान्त भी श्रोयस्कर नहाR है। देखो! यदि एेसा ही एकांत मानोगे तो वीतरागी मुनिराज त्रिकाल योग के अनु⊠न से और उपवास आदि से अपने म्ें दु:ख उत्पVा करते हQ, तो इन्हW पुण्य बंध हो जावेगा और विद्वान् मुनिजन तӧवज्ञान से संतोष लक्षण सुख को अपने म्ें प्राप्त करते हQ तो उन्हW पाप का बंध मानना (९९) (१००)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) पांडेगा। यदि आप कहW आसक्ति नहाR है अतएव ये वीतरागी और विद्वान् मुनिराज पुण्य पाप से नहाR बंधते हQ, तब तो तुम्हारा एकांत समाप्त हो जाता है और यदि एकांत लेते ही हो, तब तो कषाय रहित वीतराग छ©स्थ महामुनि को भी बंध होने लगेगा, पुन: कदाचित् भी पुण्य-पाप का अभाव न होने से किसी को भी मुक्ति नहाR मिल सकेगी। कोई-कोई लोग एकांत से परस्पर निरपेक्ष उपर्युक्त दोनें बातें को मानते हQ, इस पर भी आचायर्श्री का कहना है कि यह उभयैकात्म्य भी परस्पर म्ें वि®द्ध होने से ठीक नहाR है। उसी प्रकार से कोई लोग इन पुण्यपाप के बंध की व्यवस्था को एकांत से अवाच्य कह देते हQ सो भी ठीक नहाR है, क्येंकि एकांत से अवाच्य के मानने पर पुन: उसे 'अवाच्य' इस शब्द से वाच्य कर देने पर तो स्ववचन बाधित दोष आता है अत: यह अवाच्य एकांत पक्ष भी गलत ही है। अब आचायर् इन पुण्य-पाप के विषय म्ें सही मान्यता को स्प° करते हQ- विशुद्धि के कारण, कायर् और स्वभाव ये विशुद्धि के अंग कहलाते हQ और संक्लेश के कारण, कायर् तथा स्वभाव संक्लेश के अंग कहे जाते हQ। इस विशुद्धि के निमित्त से होने वाला सुख अथवा दुख चाहे निज म्ें हो, चाहे पर म्ें हो अथवा चाहे उभय म्ें हो, वही पुण्याœाव का हेतु है। उसी प्रकार संक्लेश के निमित्त से होने वाला सुख अथवा दु:ख चाहे अपने म्ें हो या चाहे उभय म्ें हो, वही पापाœाव का हेतु है। प्रश्न- संक्लेश क्या है ? एवं विशुद्धि क्या है ? उत्तर- आतर् और रौद्र ध्यान को संक्लेश कहते हQ एवं धमर् तथा शुक्लध्यान को विशुद्धि कहते हQ। उनम्ें भी आतर्ध्यान के इ°वियोगज, आनि°संयोगज, वेदनाजन्य और निदान एेसे चार भेद हQ और रौद्र ध्यान के भी हिंसानंदी, मृषानंदी, चौयार्नंदी और परिग्राहानंदी एेसे चार भेद हQ तथा 'मिथ्यादर्शन १ , आविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बंध के हेतु कहे गये हQ। ये पाँचें ही संक्लेश परिणाम वाले कहलाते हQ। संक्लेश के अभाव म्ें सम्यग्दर्शन आदि के निमित्त से विशुद्धि होत है। उन धमर् शुक्लध्यान™प विशुद्धि के द्वारा आत्मा म्ें स्थिरता का होना संभव है। "विवाद की कोटि को प्राप्त काय आदि की ि›âयाएँ स्व पर म्ें सुख अथवा दु:ख हेतुक संक्लेश की कारण हQ या कायर् हQ या स्वभाव स्वभाव हQ, तो वे प्राणियें म्ें अशुभ फलदायी पुद्गल परमाणुआW के संबंध म्ें हेतु हQ, क्येंकि वे संक्लेश की कारण हQ जैसे-विषभक्षण आदि। वैसे ही "विवाद की कोटि को प्राप्त कायादि ि›âयाएँ स्व पर म्ें सुख या दु:ख हेतुक भले ही हें, यदि वे विशुद्धि की कारण हQ या कायर् हQ या स्वभाव हQ तो वे प्राणियें को शुभ फलदायी पुद्गलवगर्णाआW का संबंध कराने म्ें हेतुक हQ, क्येंकि वे विशुद्धि का अंग हQ, जैसे पथ्य आहार आदि"। अब आचायर् सप्तभंगी प्रि›âया के द्वारा स्याद्वाद को सिद्ध करते हQ- कथंचित् स्व पर म्ें स्थित सुख या दु:ख पुण्याœाव के हेतु हQ, क्येंकि वे विशुद्धि के अंग हQ। कथंचित् स्व पर म्ें स्थित सुख या दु:ख

पापाœाव के हेतु हQ, क्येंकि वे संक्लेश के अंग स्व™प हQ। कथंचित् स्व पर म्ें स्थित सुख और दु:ख पुण्याœाव और पापाœाव दोनें म्ें हेतु हQ, क्येंकि ›âम से दोनें की विवक्षा है। कथंचित् अवक्तव्य ™प हQ क्येंकि युगपत् दोनें को कह नहाR सकते हQ। कथंचित् पुण्याœाव हेतुक और अवक्तव्य™प हQ, क्येंकि ›âम से विशुद्धि की और एक साथ दोनें की विवक्षा है। कथंचित् पापाœाव हेतुक और अवक्तव्य हQ, क्येंकि ›âम से संक्लेश की और युगपत् दोनें की विवक्षा है। कथंचित् उभय ™प और अवक्तव्य™प हQ, क्येंकि ›âम से दोनें की और युगपत् दोनें की अपेक्षा है। यहाँ निष्कषर् यह निकलता है कि यदि धमर्ध्यान आदि™प विशुद्ध परिणामें से किसी को या अपने को दु:ख भी हो जाता है, जैसे-उपवास आदि कराने म्ें या शिष्यें को हित के लिए फटकारने म्ें दु:ख भी है फिर भी पुण्याœाव ही होगा और यदि आतर्-रौद्र ध्यान के निमित्त से परिणामें म्ें संक्लेश हो रहा है तो चाहे अपने म्ें चाहे पर को सुख भी क्यें न हो, परन्तु उससे पाप का आœाव ही होता है इसलिए परिणामें को विशुद्ध बनाना चाहिए। N : श् १. तòवाथर्. आठवाR अ.प्र. सू.। (१०१) (१०२)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) अथ दशम: परिच्छेद: क्या अज्ञान से बंध और अल्पज्ञान से मोक्ष होता है ? अज्ञानाच्चेद्धĞ्रुवो बन्धो, ज्ञेया Óनन्त्याV्ा केवली। ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद्बहुतोÓन्यथा।। ९६।। यदि अज्ञान बंध का हेतू, निश्चित है मानो, तब तो। ज्ञेय पदारथ कहे अनन्तों, कोई केवली वैâसे हो?।। अल्पज्ञान से यदि मुक्ती हो, तब तो उसका बहु अज्ञान। बंध हेतु होगा निश्चित तब, नहाR किसी को मुक्तिलाभ।। ९६।। अन्वयाथर्- (चेत् अज्ञानात् धĞ्रुवो बंधो ज्ञेयानन्त्यात् केवली न) यदि अज्ञान से निश्चित बंध होता है तब ज्ञेय पदाथर् अनंत है उनका ज्ञान न हो सकने से कोई भी केवली नहाR हो सकता है (चेत् ज्ञानस्तोकात् विमोक्ष: बहुतो अज्ञानात् अन्यथा) यदि अल्पज्ञान से मोक्ष होता है तब उसी जीव के बहुत सा अज्ञान रहने से बंध भी होता रहेगा पुन: मोक्ष नहाR हो सकेगा। कारिकाथर्- यदि सांख्य मत के अनुसार अज्ञान से बंध अवश्यंभावी मानें तब तो ज्ञेय पदार्थों के अनन्त होने से कोई केवली नहाR बन सकेगा। यदि एकांत से अल्पज्ञान से ही मोक्ष मानी जावे, तब तो अवशि० बहुत से अज्ञान से अन्यथा-बंध की प्राप्ति हो जावेगी। अज्ञान, अल्पज्ञान से बंध-मोक्ष का उभय और अवक्तव्य नहाR बनता है विरोधाV्ोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्। अवाच्यतैकान्तेÓप्युक्तिनार्वाच्यमिति युज्यते।।९७।। यदि अज्ञान-ज्ञान से बंध-मोक्ष उभय का ए्ोक्य कहो। स्याद्वाद विद्वेषी मत म्ों, उभय विरोधी हQ तब तो।। यदि दोनें का 'अवक्तव्य' ही, अनपेक्षित हो मान लिया। तब तो अवक्तव्य इसको भी, वैâसे वच से प्रकट किया।।९७।। अन्वयाथर्- (स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्) स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियें के यहाँ अज्ञान से बंध और अल्पज्ञान से मोक्ष इनका उभय एकात्म्य भी ठीक नहाR है। क्येंकि परस्पर म्ों विरोध है (अवाच्यतैकांते आfप अवाच्यं इति उक्ति: न युज्यते) यदि सवर्था इन दोनें का अवाच्य ही कहा जाये, तो अज्ञान-ज्ञान से बंध-मोक्ष की व्यवस्था कह नहाR सकते अत: 'अवाच्य है' यह कथन भी वाच्य ही होने से आपका एकांत नहाR रहता है। कारिकाथर्- स्याद्वादन्याय के द्वेषियें के यहाँ इन दोनों का परस्पर निरपेक्ष एकांत भी श्रेयस्कर नहाR है, क्येंकि विरोध आता है। एकांत म्ों अवाच्यता को स्वीकार करने पर 'अवाच्य' यह वचन ही कथमपि शक्य नहाR है। अज्ञान से बंध एवं अल्पज्ञान से मोक्ष की सुंदर व्यवस्था अज्ञानान्मोहिनो बन्धो नाÓज्ञानाद्-वीतमोहत:। ज्ञानस्तोकाच्च मोक्ष: स्यादमोहान्मोहिनोÓन्यथा।।९८।। स्याद्वाद म्ों मोह सहित, अज्ञान बंध का कारण है। मोहरहित अज्ञान बहुत भी, नहाR बंध का कारण है।। अल्पज्ञान भी मोहरहित है, उससे मोक्ष प्राप्त होगा। किन्तु मोहयुत बहुत ज्ञान से, कमर्बंध निश्चित होता।।९८।। अन्वयाथर्- (मोहिनो अज्ञानात् बंध: वीतमोहत: अज्ञानात् न) मोह सहित अज्ञान से बंध होता है एवं मोहरहित अज्ञान से बंध नहाR होता है (अमोहात् ज्ञानस्तोकात् च मोक्ष: स्यात् मोहिनो अन्यथा) मोह रहित अल्पज्ञान से मोक्ष होता है और मोह सहित अल्पज्ञान से बंध ही होता

है। कारिकाथर्- मोह सहित अज्ञान से बंध एवं मोह रहित अज्ञान से बंध नहाR होता है। मोह रहित अल्पज्ञान से भी मुक्ति होती है किन्तु मोह सहित ज्ञानस्तोक से मुक्ति प्राप्त नहाR हो सकती है। कमर्बंध के अनुसार संसार विचित्र है कामादिप्रभवश्चित्र: कमर्बन्धाÓनु™पत:। तच्च कमर् स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्यशुद्धित:।।९९।। काम ›âधादिक भावें से है, यह उत्पVा भाव संसार। स्वयं उपाजिर्त कर्मों के, अनु™प दिखे हQ विविध प्रकार।। वह ही कमर् हुआ है अपने, रागादिक परिणामें से। कमर् सहित प्राणी दो विध हQ, भव्य-अभव्य प्रकारें से।।९९।। अन्वयाथर्- (कामादिप्रभव: चित्र: कमर्बंधानु™पत:) यह काम, ›âोध आदि से होने वाला संसार विचित्र™प है वह संसार अपने-अपने कमर् के अनुवूâल ही होता है (तत् च कमर्स्वहेतुभ्य:) और वह कमर् भी अपने-अपने रागादि परिणाम

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) के निमित्त से होता है (ते जीवा: शुद्ध्यशुद्धित:) जिनको कमर्बंध होता है, वे जीव भी शुद्धि और अशुद्धि के भेद से दो प्रकार के होते हQ। कारिकाथर्- जो काम-रागादिकें का उत्पाद होता है वह कायर्™प-भाव संसार नाना प्रकार का है वह ज्ञानावरणादि कमर्बंध के अनुसार ही होता है और वह कमर् अपने हेतुभूत रागादि परिणामें से ही होता है तथा वे जीव शुद्धि- भव्यत्व और अशुद्धि-अभव्यत्व के भेद से दो प्रकार के हQ। भावाथर्- कोई इस संसार को ईश्वर कृत मानते हQ, किन्तु जैनाचार्यों ने इस संसार को कमर्बंध के निमित्त से होता है, एेसा माना है। कमर्सहित संसारी जीव के भी दो भेद माने हQ भव्य और अभव्य। आगे कारिका म्ें इसी का स्प०करण करते हQ। शुद्धि-अशुद्धि शक्तियाँ वैâसी हQ शुद्ध्यशुद्धी पुन: शक्ती ते पाक्या Óपाक्यशक्तिवत्। साद्यनादी तयोव्यर्क्ती स्वभावोÓतवर्कगोचर:।।१००।। भव्य अभव्य कही दो शक्ती, पकने योग्य न पकने योग्य। उांडद शक्तिवत् इन दोनें की, आfभव्यक्ती है सादि-अनादि।। सम्यक्त्वादि प्रकट भव्यें के, अभव्य कोरडू मूंग समान। वस्तु स्वभाव तवर्क करने का, विषय नहाR हो सके प्रधान।।१००।। अन्वयाथर्- (पुन: ते शुद्धŸाशुद्धी शक्ती पाक्याÓपाक्यशक्तिवत्) पुन: जीव की वे शुद्धि-अशुद्धि शक्तियाँ पकने योग्य न पकने योग्य की शक्ति के समान हQ (तयो: व्यक्ती साद्यनादी) उन दोनें शक्तियें की व्यक्ति-प्रकटता सादि और अनादि है (स्वभाव: अतवर्कगोचर:) क्येंकि स्वभाव तवर्क के गोचर नहाR होता है। कारिकाथर्- जीवें की ये शुद्धि और अशुद्धि ™प दो शक्तियाँ मूंग आदि के पकने योग्य एवं न पकने योग्य शक्ति के समान हQ पुन: इन दोनें की शक्ति भव्य एवं अभव्य जीवें की अपेक्षा से सादि एवं अनादि है वस्तु का यह स्वभाव तवर्क के अगोचर है। भावाथर्- संसारी जीव के भव्य-अभव्य के भेद से दो भेद हQ उनम्ें जो शक्तियाँ हQ, वे पकने योग्य उांडद या नहाR पकने योग्य उांडद के समान है। जैसे- कोरडू मूंग या उांडद चाहे जितना पकाओ नहाR पकता है वैसे ही अभव्य जीव कभी भी मोक्ष नहाR जा सकते हQ उनकी शुद्धता प्रकट नहाR हो सकती है, इसीलिए ये अशुद्ध ही हQ इनकी अशुद्धि अनादि है, अनंत हQ किन्तु भव्य जीव कर्मों का नाश करके शुद्ध हो जाते हQ इसलिए इनकी शुद्धता की प्रकटता सादि है। कोई कहे एेसा क्यें ? तो इसका कोई उत्तर नहाR है, क्येंकि वस्तु का स्वभाव प्रश्न का विषय नहाR होता है। प्रमाण का लक्षण और भेद तòवज्ञानं प्रमाणं ते, युगपत्सवर्भासनम्। ›âमभावि च यज्ज्ञानं, स्याद्वादनयसंस्कृतम्।।१०१।। भगवन्! तव शासन म्ें तòवज्ञान प्रमाण कहा जाता। उसम्ें युगपत् सवर्प्रकाशी, केवलज्ञान कहा जाता।। ›âमभावी हQ मतिज्ञानादिक, तòव प्रमाणीभूत सही। स्याद्वाद से नय से संस्कृत, जो ›âमभावी ज्ञान वही।।१०१।। अन्वयाथर्- (ते तòवज्ञानं प्रमाणं युगपत् सवर्भासनं) हे भगवन्! आपके तòवज्ञान को प्रमाण कहा है, उसम्ें युगपत् सवर् पदार्थों को प्रकाशित करने वाला ज्ञान केवलज्ञान है (›âमभावि च

यज्ज्ञानं स्याद्वादनयसं्स्कृतं) और ›âम से उत्पV्ा होने वाले जो ज्ञान हQ वे स्याद्वाद और नयें से संस्कृत हQ। कारिकाथर्- हे भगवन्! आपके सिद्धान्तानुसार तōवज्ञान ही प्रमाण है, उसम्ें युगपत् सवर्पदार्थों का अवभासन करने वाला ज्ञान केवलज्ञान है एवं ›âमभावी जो ज्ञान हQ वे स्याद्वाद और नय से संस्कृत मतिश्रुातज्ञानादि हQ। प्रमाणें का फल क्या है ? उपेक्षा फलमाद्यस्य, शेषस्यादानहानधी:। पूवË वाÓज्ञाननाशो वा, सवर्स्याÓस्य स्वगोचरे।।१०२।। केवलज्ञान प्रमाण™प का, कहा उपेक्षा फल जानो। शेषज्ञान ›âमभावी का फल, ग्राहण त्याग बुद्धी मानों।। अथवा ›âमभावी ज्ञानें का, कहा उपेक्षा फल यदि वा। सब ज्ञानें का फल स्व-स्व, विषयक अज्ञान नाश होना।।१०२।। अन्वयाथर्- (आद्यस्य फलं उपेक्षा शेषस्य आदानहानधी:) आदि के केवल- ज्ञान का फल उपेक्षा है एवं शेष ›âमवर्ती ज्ञानें का फल ग्राहण योग्य को ग्राहण करना और छोंडने योग्य को छोंडना इस बुद्धि का होना है (सवर्स्य अस्य पूवार् वा स्वगोचरे अज्ञाननाशो वा) अथवा सभी ज्ञानें का फल उपेक्षा है अथवा सभी

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) ज्ञानें का फल अपने-अपने विषय म्ें अज्ञान का अभाव होना ही है। कारिकाथर्- केवलज्ञान का व्यवहित फल उपेक्षा, शेष, मति, श्रुत आदि चारें ज्ञानें का व्यवहित फल ग्राहण करने योग्य को ग्राहण करना, छोंडने योग्य को छोंडना तथा उपेक्षा करना है एवं इन पाँचें ज्ञानें का ही साक्षात् फल अपने- अपने विषयभूत पदार्थों म्ें अज्ञान का नाश होना ही है। ‘स्यात्’ शब्द का महत्व वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रति विशेषणम्। स्यिाVापातोÓथर्योगित्वात्तव केवलिनामपि।।१०३।। नाथ! आपके या श्रुतकेवलि मुनियें के भी वाक्यें म्ें। स्यात् शब्द है निपात् चूँकि, अथर् साथ संबंधित है।। इसीलिए यह सब वाक्यें म्ें, ‘अनेकांत’ का द्योतक है। गम्य वस्तु के प्रती विशेषण, अथर् विवक्षित सूचक है।।१०३।। अन्वयाथर्- (तव केवलिनां अिप स्यात् निपातो अथर्योगित्वात्) हे भगवन्! आपके तथा श्रुतकेवलियें के भी मतानुसार ‘स्यात्’ यह निपात शब्द है जो कि अथर् के साथ संबंधित है (वाक्येषु अनेकांतद्योती गम्यं प्रति विशेषणम्) यह वाक्यें म्ें अनेकांत का द्योतक तथा गम्य ™प अथर् के प्रति विशेषण माना गया है। कारिकाथर्- हे भगवन्! श्रुत केवलियें के सिद्धान्त म्ें एवं आप केवलज्ञानी के सिद्धांतानुसार “स्यात्” यह शब्द निपात सिद्ध है वाक्यें म्ें अनेकांत का उद्योतन करने वाला है और गम्य-अथर् के प्रति समथर् विशेषण ™प है क्येंकि यह अपने अथर् से रहित है। स्याद्वाद का स्व™प स्याद्वाद: सवर्थैकान्त-त्यागात् विंâवृत्तचिद्विधि:। सप्तभंगनयापेक्षो हेयाÓÓदेयविशेषक:।।१०४।। सदा सवर्थैकांत त्याग से, स्याद्वाद है सुखकर ही। स्यात्-कथंचित् और कथंचन, शब्दें से एकाथर् सही।। सप्तभंग अ® सभी नयें की, सदा अपेक्षा रखता है। सभी वस्तु म्ें हेय और आदेय व्यवस्था करता है।।१०४।। अन्वयाथर्- (स्याद्वाद: सवर्थैकांतत्यागात् विंâ वृत्तचिद्विधि:) यह ‘स्याद्वाद’ पद सवर्था एकांत का त्याग करने वाला है Eक शब्द से चित् अव्यय लगकर जो शब्द ‘कथंचित्’ आदि निष्पVा होते हQ, वे इसके पयार्यवाची हQ (सप्तभंग नयापेक्षो हेयादेयविशेषक:) यह स्याद्वाद सप्तभंग और नयें की अपेक्षा रखने वाला है तथा हेय और उपादेय का भेद करने वाला होता है। कारिकाथर्- सवर्था एकांत के त्याग से ही स्याद्वाद होता है और कथंचित् आदि इसके पयार्यवाची ही हQ। यह सप्तभंग नयें की अपेक्षा रखने वाला है और हेय उपादेय की विशेष व्यवस्था करने वाला है। स्याद्वाद और केवलज्ञान म्ें क्या अंतर है ? स्याद्वादकेवलज्ञाने सवर्तŸवप्रकाशने। भेद: साक्षादसाक्षाच्च, çवस्त्वन्यतमं भवेत्।१०५।। स्याद्वाद वैâवल्यज्ञान ये, सभी तŸव के परकाशक। स्याद्वाद सब परोक्ष जाने, केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रगट।। अंतर इतना ही इन दोनें, मेW परोक्ष-प्रत्यक्ष कहा। इन दोनें से नहाR प्रकाशित, अथर् अवस्तू™प हुआ।। १०५।। अन्वयाथर्- (स्याद्वादकेवलज्ञाने सवर्तŸवप्रकाशने) स्याद्वाद और केवलज्ञान दोनें ही सभी तŸवें के प्रकाशक हQ (भेद: साक्षात् असाक्षात् च अन्यतमं हि अवस्तु भवेत्) इन दोनें के प्रकाशन म्ें पदार्थों का साक्षात्

करने और साक्षात् न करने का ही अंतर है इन दोनें ज्ञानें म्ें से जो वस्तु किसी ज्ञान के द्वारा प्रकाशित नहाR होती है, वह अवस्तु कहलाती है। कारिकाथर्- स्याद्वाद और केवलज्ञान ये दोनें ही सम्पूणर् त०वें को प्रकाशित करने वाले हQ। इन दोनें म्ें अन्तर इतना ही है कि केवलज्ञान साक्षात् सम्पूणर् त०वें का प्रकाशक है एवं स्याद्वाद असाक्षात् परोक्ष™प से प्रकाशक है, क्येंकि इन दोनें के बिना प्रकाशित वस्तु अवस्तु ™प ही है। नय और हेतु का लक्षण सधमर्णैव साध्यस्य, साधम्यार्दविरोधत:। स्याद्वादप्रविभक्ताÓथर्-विशेषव्यÀाको नय:।।१०६।। जो सपक्ष के साथ साध्य के, साधर्म्यों से आfविरोधी। साध्य अथर् का ज्ञान कराने, वाला 'नय' है प्रगट सही।। स्याद्वाद से प्रगट किये ही, अथर् विशेषें का व्यंजक। सुप्रमाण से ज्ञात वस्तु के, अंश-अंश को करे प्रगट।।१०६।। (१०७) (१०८)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) अन्वयाथर्- (सधमर्णा एव साधम्यार्त् आविरोधत:) सपक्ष के साथ ही अपने साध्य के साधम्यर् से जो बिना किसी विरोध से (स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेष्यव्यञ्जक: नय:) श्रुत प्रमाण™प स्याद्वाद के द्वारा जाने गये अथर् विशेष का व्यंजक होता है, वह नय कहलाता है। कारिकाथर्- सपक्ष (Â°ान्त) के साथ ही साध्य के साधम्यर् से आविरोध ™प से जो स्याद्वादश्रुत प्रमाण के द्वारा विषयीकृत पदाथर् विशेष का व्यंजक होता है वह नय कहलाता है। यह नय का लक्षण है इसे ही हेतु कहते हQ। भावाथर्- नय हेतुवाद है और स्याद्वाद™प आगम अहेतुवाद है। इन दोनें से संस्कृत तòवज्ञान ही युक्ति एवं आगम से आवि®द्ध होता हुआ सुनिश्चित ™प से बाधक प्रमाण होने से रहित है। यहाँ नय का लक्षण प्रगट किया है और उसे हेतु स्व™प बतलाया है। क्येंकि जो हेतु का स्व™प है वही नय का स्व™प है जो आपने साध्य के साथ आविनाभाव संबंध रखता है, वही हेतु है इससे यह स्प° है कि विलक्षण और पंच™प हेतु वास्तविक नहाR है केवल एक अन्यथानुपपत्ति ही हेतु का निर्दोष वास्तविक लक्षण है। जिस प्रकार नय स्याद्वाद से जाने गये अथर् विशेष का प्रगट करने वाला है उसी प्रकार हेतु भी एेसा ही होता है। द्रव्य का स्व™प नयोपनयैकान्तानां, त्रिकालानां समुच्चय:। आविभüाड्भावसम्बन्धो, द्रव्यमेकमनेकधा।।१०७।। त्रिकालवर्ती नय-उपनय के, एकांतें का जो समुदाय। अपृथक् है तादात्म्य भावयुत, वही द्रव्य है सहज स्वभाव।। द्रव्य कहा यह एक™प भी, और अनेक™प भी है। अनंतधमार् द्रव्य के इक-इक, धमर् कहे नय वो ही हQ।।१०७।। अन्वयाथर्- (त्रिकालानां नयोपनयैकान्तानां समुच्चय:) त्रिकालवर्ती नय और उपनयें के एकांत विषयें का जो समुच्चय है (आविभüाट् भावसंबंध: द्रव्यं एवंâ अनेकधा) वह कथंचित् तादात्म्य स्वभाव के संबंध को लिए हुए है उसी का नाम द्रव्य है वह द्रव्य एक है और अनेक भेद™प है। कारिकाथर्- त्रिकाल विषयक, नय और उपनयें के एकांत का जो समुच्चय है और आविभüाड् भाव संबंध-अपृथक् स्वभाव संबंध™प है वही द्रव्य है और वह एक भी है अनेक प्रकार का भी है। भावाथर्- द्रव्य और पयार्य के भेद से नय के अनेक भेद हQ वस्तु के एक अंश को ग्राहण करने वाले वक्ता के आभिप्राय विशेष को नय कहते हQ एवं नयें की शाखा-उपशाखा को उपनय कहते हQ। अनंतधमर् विशि° वस्तु के एक धमर् को ही ग्राहण करना इनका एकांत है त्रिकालवर्ती इन नय और उपनयें का विषयभूत जो पयार्य विशेषें का समुदाय है वह द्रव्य है, वह एकानेक स्व™प है। यह समुदाय कथंचित् तादात्म्य संबंध ™प है। मिथ्यानय-सम्यव्âनय का लक्षण मिथ्यासमूहो मिथ्या चेVा मिथ्यैकान्ततास्ति न:। निरपेक्षा नया मिथ्या, सापेक्षा वस्तु तेÓथर्कृत।।१०८।। यदि मिथ्या एकांतें का, समुदाय हुआ वह मिथ्या ही। तब तो सदा हमारे मत म्ों, वह मिथ्या एकांत नहाR।। नय निरपेक्ष कहे मिथ्या हQ, नय सापेक्ष कहे सम्यव्â। सुनय अथर् ›âयाकारी हQ, उसका समुदय है सम्यक्।।१०८।।

अन्वयाथर्- (मिथ्या समूहो मिथ्या चेत् न: मिथ्यैकांतता न आfस्त) यदि कहो कि नयें और उपनयें के एकांतें का जो समूह है वह मिथ्याआW का समूह है वह मिथ्या ही है यदि एेसा कहो तो ठीक नहाR है, क्येंकि हमारे यहाँ मिथ्या एकांतता नहाR है (ते निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा अथर्कृत् वस्तु) हे भगवन्! आपके मत म्ें जो नय परस्पर म्ें निरपेक्ष हQ वे मिथ्या हQ एवं जो नय परस्पर म्ें सापेक्ष हQ वे सम्यव्â हQ उनके विषय म्ें अथर्ि्र›âयाकारी हQ इसलिए उनका समूह ही वस्तु है। कारिकाथर्- मिथ्याभूत एकांत का समुदाय यदि मिथ्या™प ही है तब तो वह मिथ्या एकांत हम जैनियें के यहाँ नहाR है। हे भगवन्! आपके मत म्ें निरपेक्ष नय मिथ्या हQ और सापेक्ष नय वस्तु हQ, अथर्ि्र›âयाकारी हQ। वस्तु को विधि आदि के द्वारा कहते हQ नियम्यतेÓर्थो वाक्येन विधिना वारणेन वा। तथाÓन्यथा च सोÓवश्य-मविशेष्यत्वमन्यथा।।१०९।। विधिवाक्य या निषेधवाक्यें से, पदाथर् का कथन सही। विधिवाक्य से वस्तु आfस्त है, निषेध वच से नास्ति कही।। (१०९) (११०)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) यदि एेसा नहिं मानें तब तो, वस्तु विशेषण शून्य रही। पुन: विशेष्य नहाR होने से, वस्तु 'अवस्तू' असत् हुई।।१०९।। अन्वयाथर्- (विधिना वारणेन वा वाक्येन अथर्: नियम्यते) विधि वाक्य अथवा निषेध वाक्य के द्वारा पदाथर् का नियम किया जाता है (स: तथा अन्यथा च अवश्यं अन्यथा आfविशेष्यं) जो अथर् जिस वाक्य से निश्चित है वह अन्यथा™प होने से विशेष्य न होकर आfविशेष्य ही है। कारिकाथर्- विधि वाक्य अथवा निषेध वाक्य के द्वारा अथर् का निश्चाय किया जाता है। यह अथर् विधि वाक्य से विधि और प्रतिषेध वाक्य से प्रतिषेध ™पसिद्ध है, अन्यथा-एकांत ™प से विचार करने पर तो अथर् के सöव-असöव म्ें भेद ही नहाR हो सकेगा। भावाथर्- प्रत्येक वस्तु विधीवाक्य अथवा निषेध वाक्य के द्वारा प्रसिद्ध है विधिवाक्य से वस्तु आfस्त™प है एवं निषेध वाक्य से नास्ति™प है। यदि एेसा न मानो तो वह वस्तु किसी भी विशेषण से कही नहाR जा सकेगी। उभयात्मक वस्तु को एक ™प कहना मिथ्या है तदतद्वस्तुवागेषा, तदेवेत्यनुशासती। न सत्या स्यान्मृषावाक्यै:, कथं तöवाथर्देशना।।११०।। वस्तू तत् अ® अतत् ™प है, परन्तु जो 'तत्' ही कहते। एेसे वच तो असत्य ही हQ, चूँकि वस्तु 'अतत्' भी है।। पुन: मृषा वचनें से वैâसे, तöवें का उपदेश घटे। विधीवाक्य से आfस्त मात्र ही, कोई पदारथ नहाR दिखे।।११०।। अन्वयाथर्- (तत् अतत् वस्तु तत् एव इति अनुशासती एषा वाक् सत्या न स्यात्) प्रत्येक वस्तु तत् अतत् ™प हQ किन्तु वस्तु 'तत् ™प ही है' इस प्रकार से कहने वाले वचन सत्य नहाR हQ (मृषावाक्यै: तöवाथर्देशना कथं) अत: मृषा वचनें से तöवाथर् का उपदेश वैâसे हो सकता है। कारिकाथर्- ये वचन "तत्, अतत्" स्वभाव वाली वस्तु का प्रतिपादन करते हQ, यदि वचन वह ही है, इस प्रकार स्व™प के समान पर™प से भी विधि™प मात्र ही वस्तु को प्रतिपादित करW तब तो वे वचन असत्य हो जाय्ेंगे पुन: असत्य वचनें से तöवाथर् का उपदेश कथन वैâसे हो सकेगा ? भावाथर्- विधिवादी वेदांती लोगें का कहना है कि वचन केवल वस्तु के आfस्तत्व को ही कहते हQ, किन्तु यह बात गलत है, क्येंकि प्रत्येक वस्तु विधि-निषेध आदि ™प से अनंत धमार्त्मक है और प्रत्येक वचन अपने अथर् को कहते हुए अन्य अथर् का निषेध अवश्य कर देते हQ। वचन का वास्तविक स्वभाव क्या है ? वाक्स्वभावोÓन्यवागथर्-प्रतिषेधनिरंकुश:। आह च स्वाथर्सामान्यं, ताÂग् वाच्यं खपुष्पवत्।।१११।। अन्य वचन के अर्थों के, प्रतिबोध हेतु निरअंकुश ही। निज सामान्य अथर् को कहना, एेसा वचन स्वभाव सही।। किन्तू केवल निषेध मुख से, वचन स्वाथर् प्रतिपादक हQ। एेसे वच से कथित वस्तु ही, गगनकमलवत् 'असत्' रहे।।१११।। अन्वयाथर्- (वाक् स्वभाव: अन्यवागथर् प्रतिषेधनिरंकुश: स्वाथर्सामान्यं च आह) वचन का यह स्वभाव है कि अन्य वचन के अथर् के प्रतिषेध करने म्ें निरंकुश और अपने अथर् सामान्य को कहता है (ताÂक् वाच्यं खपुष्पवत्) इस वचन के स्वभाव से भिVा जो

वचन केवल निषेध मुख अथर् का प्रतिपादन करते हQ वे आकाशपुष्पवत् असत् हQ। कारिकाथर्- वचन का स्वभाव अन्य वचन के अथर् का प्रतिषेध करने से निरंकुश है और वह पदाथर् सामान्य निरपेक्ष अपने अथर् सामान्य को कहता है। किन्तु 'केवल निषेध मुख से ही वचन अपने अथर् को कहते हQ।' एेसा बौद्धें का कथन आकाश पुष्प के समान असत् है। भावाथर्- बौद्धें ने वचनें को अन्यापोह अथर् का कहने वाला माना है अथार्त् किसी ने गौ: शब्द कहा उस शब्द का यह अथर् है कि "अगो: व्यावृत्ति: गौ:" गो से भिVा अन्य अÕा नहाR है गधा नहाR है इत्यादि से अन्य अर्थों का निषेध करके ही शब्द अथर् को कहते हQ। गौ शब्द से गाय अथर् को नहाR कहते हQ। इस पर जैनाचार्यों का कहना है कि केवल अन्य अथर् के निषेध को कहने वाले वचन असत्य हQ क्येंकि प्रत्येक शब्द प्रथम अपने अथर् को अवश्य कहते हQ। गौ शब्द के सुनते ही मनुष्य को गाय का बोध हो जाता है। स्यात्कार ही आभिप्रेत को प्राप्त कराने वाला है सामान्यवाग् विशेषे चेVा शब्दार्थो मृषा हि सा।

आभिप्रेतविशेषाप्ते: स्यात्कार: सत्यलाञ्छन:।।११२।। (१११) (११२)

ये सामान्य वचन ही कहते, अन्यापोह विशेषाथर्क। एेसा कथन असंगत चूंकी, ये वच नहिं शब्दाथर् कथक।। अत: वचन ये मृषा परन्तू जो आिभप्रेत विशेषारथ। प्राप्त कराने हेतू एेसा, स्यात्कार है चिन्ह सुतथ्य।।११२।। अन्वयाथर्- (सामान्यवाग् विशेषे चेत् शब्दाथार् मृषा हि सा) यदि कहा जाये कि सामान्य वाक्य पर के अभाव™प विशेष म्ें ही रहता सो ठीक नहाR है। क्येंकि यह वाक्य विशेष शब्द के अथर् को नहाR कहता है अत: यह वाक्य मिथ्या ही हQ (आिभप्रेतविशेषाप्ते: स्यात्कार: सत्यलाञ्छन:) आिभप्राय म्ें स्थित आिभप्रेत विशेष की प्राप्ति कराने म्ें सच्चा साधनभूत सत्य चिन्ह वाला यह 'स्यात्कार' शब्द है। कारिकाथर्- सामान्य वचन विशेष का कथन नहाR करते हQ फिर भी यदि आप मान ल्ेंवे तब तो शब्दाथर् असत्य ही हो जाय्ेंगे। अतएव आिभप्रेत विशेष की प्राप्ति के लिए सत्य लाञ्छन वाला स्यात्कार पद ही है। भावाथर्- आिभप्राय म्ें इ° अथर् विशेष को बताने वाला यह 'स्यात्' शब्द चिन्हित स्याद्वाद ही है अन्य सामान्य वचन आदि नहाR है। स्याद्वाद की सम्यक् व्यवस्था विधेयमीप्सिताथार्” प्रतिषेध्याÓविरोधि यत्। तथैवाÓÓदेय-हेयत्व-मिति स्याद्वादसंस्थिति:।।११३।। जो विधेय है वह अपने, प्रतिषेध्य नास्ति सह आिवरोधी। इच्छित अर्थो का साधन वह, स्याद्वाद उभयात्मक ही।। वैसे ही आदेय-हेय है, वस्तु का सवर्था नहाR। इस प्रकार से स्याद्वाद की, सम्यक् स्थिति घटित हुई।।११३।। अन्वयाथर्- (यत् विधेयं ईप्सिताथार्” प्रतिषेध्याÓविरोधि) जो विधि वाक्य के द्वारा कहा गया विधेय है वह इच्छित अथर् का कारण है और अपने प्रतिषेध्य- नास्ति के साथ आिवनाभावी होने से आिवरोधी है (तथैव आदेयहेयत्वं इति स्याद्वादसंस्थिति:) और उसी प्रकार वस्तु का उपादेय एवं हेयपना सिद्ध है अन्यथा नहाR। इस प्रकार से स्याद्वाद की सम्यक् प्रकार से व्यवस्था हो जाती है। कारिकाथर्- 'आिस्त' इत्यादि शब्द से वाच्य विधेय वाक्य ही ईप्सित अथि्र›âया के प्रति कारण है और वह प्रतिषेध्य-नास्तित्वादि धमर् से आिवरोधी- आिवनाभावी है एवं उसी प्रकार से ही आदेय और हेय हQ इस प्रकार से स्याद्वाद की सम्यक् व्यवस्था हो जाती है। आप्त मीमांसा करने का उद्देश्य इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छताम् १। सम्यग्मिथ्योपदेशाथर्विशेषप्रतिपत्तये ।।११४।। हित के इच्छुक भव्यजनें को, सत्य-असत्य बताने को। सम्यक् मिथ्या उपदेशें के, अथर् विशेष समझाने को।। इस प्रकार से रची गई यह, आप्त समीक्षा को करती। कुशल 'आप्तमीमांसा' स्तुति यह, सम्यक् "ज्ञानमती" करती।। ११४।। अन्वयाथर्- (इति इयं आप्तमीमांसा हितं इच्छतां) इस प्रकार से यह आप्तमीमांसा हित के चाहने वालें को (सम्यक्-मिथ्योपदेशाथर्विशेषप्रतिपत्तये विहिता) सम्यक् उपदेश और मिथ्या उपदेश के अथर् विशेष का ज्ञान कराने के लिए की गई है। कारिकाथर्- हित प्राप्ति की इच्छा करने वाले भव्य जीवें को सम्यव्â उपदेश और मिथ्या उपदेश के अथर् विशेष का ज्ञान कराने के लिए यह

आप्तमीमांसा नाम की स्तुति रचना मQ्ने (श्री समंतभद्र स्वामी ने) बनाई है। भावाथर्- जो भव्य हQ् वे ही अपनी आत्मा के हित की भावना करWगे न कि अभव्य, अत: भव्य जीव ही सम्यक् उपदेश को प्राप्तकर-ग्राहणकर मिथ्या उपदेश का त्याग करWगे। यह आप्तमीमांसा स्तोत्र हमारे और आपके सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति और विशुद्धि म्ें निमित्त बन्ें, यही श्रीजिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है। ।।इति ग्रान्थ: समाप्त:।। N : श् (११३) (११४) १. 'हितमिच्छताम्' इत्यपि पाठो लभ्यते।

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) दशव्ें परिच्छेद का सार अज्ञान से बंध और ज्ञान से मोक्ष के एकांत का विचार एवं स्याद्वाद की सिद्धि (कारिका ९६ से ११४ तक) सांख्य का कहना है कि अज्ञान से ही बंध होता है और ज्ञान से ही मोक्ष होता है। इस पर जैनाचायर् का कहना है कि यदि आप अज्ञान से बंध अवश्यंभावी मानो गे तो ज्ञेय पदाथर् तो अनंत हQ। पुन: उनको जानने वाला कोई नहाR हो सकेगा औ र यदि अल्पज्ञान से ही मोक्ष मानो तो बचे हुए अवशि° अज्ञान से मोक्ष हो जावेगा। अथवा सभी प्राणियें म्ें कुछ न कुछ ज्ञान संभव ही है अत: सभी जीव मुक्त हो जाव्ेंगे। नैयायिक का कहना है कि दु:ख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष और मिथ्याज्ञान का उत्तरोत्तर अभाव हो जाने से मोक्ष हो जाती है क्येंकि दु:खादिकें का अभाव तôवज्ञानपूर्वक ही होता है। मिथ्याज्ञान से दोषें की उद्भूति अवश्य होती है। इस पर जैनाचार्यों का कहना है कि मिथ्याज्ञान का संपूर्णतया अभाव वैâसे होगा ? पुन: मिथ्याज्ञान से दोष आदि परम्परा चलती ही रहेगी। स्याद्वाद का आश्राय लेने वाले जैनाचार्यों का कहना है कि जो एकांत से यह कहा जाता है कि अज्ञान से बंध और ज्ञान से मोक्ष होता है सो असंभव है क्येंकि सभी को किसी न किसी विषय म्ें अज्ञान तो है ही है पुन: किसी न किसी को मोक्ष नहाR हो सकेगा इसलिए वास्तविक चीज तो यह है कि मोहसहित अज्ञान से बंध होता है किन्तु मोहरहित रागद्वेषादि कषायें से रहित अज्ञान अथार्त् अल्प ज्ञान से मोक्ष होता है क्येंकि मोहकमर्रहित उपशांत कषाय और क्षीण कषाय वाले एेसे ग्यारहव्ें और बारहव्ें गुणस्थान म्ें यद्यपि अज्ञान है फिर भी उनके बंध नहाR होता है इन दोनें गुणस्थानें म्ें केवलज्ञान न होने से अज्ञान है ही है। वस्तुत: केवलज्ञान की अपेक्षा श्राुतज्ञान आदि क्षायोपशमिक ज्ञान अल्प ही हQ। वह अल्पज्ञान मोहरहित छ©स्थ वीतरागी के चरम समय म्ें मौजूद है, उसी से ही उत्तर क्षण म्ें तेरहव्ें गुणस्थान म्ें केवलज्ञान प्रगट हो जाता है, जिसे कि आहËत्य लक्षण को अपर मोक्ष कहते हQ किन्तु मिथ्याÂि° से लेकर दशव्ें गुणस्थान तक मोहसहित ज्ञान कमर्बंध का ही कारण है अत: स्याद्वाद प्रि›âया से समझना चाहिए। (१) कथंचित् अज्ञान से बंध होता है, क्येंकि वह मिथ्यात्व कषायादि से सहित है। (२) कथंचित् अज्ञान से बंध नहाR होता है, क्येंकि वह मिथ्यात्व कषायादि से रहित है। (३) कथंचित् अज्ञान से बंध होता है और नहाR होता है, क्येंकि ›âम से मिथ्यात्वादि सहित और रहित दोनें की विवक्षा है। (४) कथंचित् अवक्तव्य है क्येंकि दोनें अपेक्षाआW को एक साथ कह नहाR सकत् हQ। (५) कथंचित् अज्ञान से बंध और अवक्तव्य है, क्येंकि ›âम से मोहसहित की तथा युगपत् दोनें की विवक्षा है। (६) कथंचित् अज्ञान से अबंध और अवक्तव्य है, क्येंकि ›âम से मोहरहित और युगपत् दोनें की अपेक्षा है। (७) कथंचित् अज्ञान से बंध और अबंध तथा अवक्तव्य है, क्येंकि ›âम से मोहसहित और रहित की तथा युगपत् दोनें की अपेक्षा है। इसी प्रकार से मोहसहित अल्पज्ञान से मोक्ष नहाR होता है तथा

मोह रहित अल्पज्ञान से भी मोक्ष होता है, इसम्ें भी सप्तभंगी प्रि›âया घटित करना चाहिए। प्रमाण और नय हे भगवान्! आपके सिद्धान्त म्ें तöवज्ञान ही प्रमाण है। उसम्ें युगपत् सभी पदार्थों का अवभासन-प्रकाशन करने वाला केवलज्ञान है और स्याद्वाद नय से संस्कृत मति, श्राुत आदि शेष ज्ञान ›âमभावी हQ। यहाँ पर तöवज्ञान को प्रमाण कहने से अज्ञान, निराकार दर्शन, संशय आदि ज्ञान इन सबका निराकरण हो जाता है। इस प्रमाण से प्रत्यक्ष-परोक्ष एेसे दो भेद होने से परोक्ष के अन्तगर्त स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तवर्क, अनुमान और आगम ये ज्ञान भी प्रमाण ™प हQ। केवलज्ञान का फल तो उपेक्षा है। शेष ज्ञानें का फल ग्राहण करना, त्याग करना तथा उपेक्षा करना इन तीनें™प है अथवा अपने-अपने विषय म्ें अज्ञान का अभाव होना ही ज्ञान का फल है। हे भगवन्! आपके यहाँ ‘स्यात्’ यह पद निपात से सिद्ध है। वाक्यें म्ें अनेकांत उद्योतित करने वाला है एवं अपने अथर् से सहित होने से अथर् के प्रति समथर् विशेषण है। सत्, असत्, नित्य, आिनत्य आदि ™प सवर्था एकांत का निराकरण करने वाला अनेकांत है। जैसे ‘स्याज्जीव:’ एेसा कहने से उसका प्रतिपक्षी अजीव भी जान लिया जाता है। सवर्था एकांत के त्याग से ही स्याद्वाद होता है। ‘कथंचित्’ आदि शब्द इसा r के पयार्यवाची हQ, यह सप्त भंगें की अपेक्षा करके स्वभाव और परभाव के द्वारा वस्तु के सत्-असत् आदि धर्मों की व्यवस्था करता है। विरोध रहित स्याद्वाद™प आगम प्रमाण के द्वारा विषय किये गये पदाथर् (११५) (११६)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) विशेष का जो व्यंजक है वह नय कहलाता है अथार्त् जिसके द्वारा जानने योग्य अथर् का ज्ञान होता है, वह नय है। अनेक ™प अथर् को विषय करने वाला अनेकांत™प ज्ञान प्रमाण है। अन्य धर्मों की अपेक्षा करते हुए वस्तु के एक अंश का ज्ञान नय है और अन्य धर्मों का निराकरण करके वस्तु के एक अंश को ग्राहण करने वाला दुनर्य है, क्येंकि यह विपक्ष का विरोधी होने से केवल स्वपक्ष मात्र का हठाग्राही है। यदि कोई कहे कि मिथ्या-एकांत का समुदाय मिथ्या™प ही है तो हमने एेसा नहाR माना है। हमारे यहाँ निरपेक्ष नय मिथ्या है और उनका समूह भी मिथ्या ही है। यदि वे ही नय सापेक्ष हQ, तो सम्यव्â हQ, वास्तविक हQ। नय के मूल म्ें दो भेद हQ-द्रव्याथिर्क और पयार्याथिर्क। इन दो के ही सात भेद हो जाते हQ। नैगम, संग्राह, व्यवहार, त्र+जुसूत्र, शब्द, समभि™iढ और एवंभूत। जो द्रव्य को ही विषय करे, जिसकी Âि° म्ें पयार््ें गौण हें, वह द्रव्याथिर्क नय है तथा जो पयार्य मात्र को विषय करे, वह पयार्याथिर्क नय है। जैसे-द्रव्याथिर्क नय से जीव नित्य है। जन्म-मरण से रहित है तथा पयार्याथिर्क नय से जीव आfनत्य है, उसकी पयार्ये का उत्पाद-विनाश होने से वह जीव से भिVा नहाR है। स्याद्वाद सप्तभंग और नयें की अपेक्षा रखने वाला है, देय और उपादेय के भेद को करने वाला है तथा सभी तö वें को केवलज्ञान के समान प्रकाशित करता ह ै। स्याद्वादकेवलज्ञाने सवर्तöवप्रकाशने। भेद: साक्षादसाक्षाच्च ç्वस्त्वन्यतमं भवेत्।।१०५।। अथर्- स्याद्वाद और केवलज्ञान दोनें ही सम्पूणर् तöवें को प्रकाशित करने वाले हQ। अंतर केवल इतना ही है कि केवलज्ञान साक्षात् सम्पूणर् तöवें को प्रकाा fशत करता है और स्याद्वाद असाक्षात् परोक्ष™प से प्रकाशित करता है। स्याद्वाद आगम परोक्ष™प से सभी पदार्थों का ज्ञान करा देता है। यहाँ पर 'सवर्' इस पद से उनकी सम्पूणर् गुण, पयार्ये को नहाR लेना चाहिए क्येंकि 'मतिश्रुातयोनिर्बंधो द्रव्य् ेष्वसवर्पयार्येषु' मतिज्ञान तथा श्रुातज्ञान का विषय सभी द्रव्य और उनकी कुछ-कुछ पयार््ें हQ, एेसा सूत्रकार का वचन है अत: प्रमाण का विषय धमाËतरें को ग्राहण करना है, नयें क ा विषय धमाËतरें का त्याग करना है क्येंकि प्रमाण से तत्-अतत् स्वभाव का ज्ञा न होता है, नय से तत् एक अंश का ज्ञान होता है तथा दुनर्य से अन्य का निराकरण करके निरपेक्ष एक अंश का ज्ञान होता है। इसलिए- हे भगवन्! जिन्हW हमने निर्दोष™प से निश्चित किया है, वे निर्दोष आप ही हQ क्येंकि आपके वचन युक्ति और शाŒा से आfवरोधी हQ। आप ही मोक्षमागर् के प्रणेता कमर्भूभृत् के भेत्ता एवं विÕा तöवें के ज्ञाता सिद्ध हQ, इस कारण से आप ही भगवान् अर्हंत सवर्ज्ञ सिद्ध हQ, स्याद्वाद के नायक हQ यह बात सिद्ध हो गई। इस प्रकार से हित की इच्छा करने वालें के लिए मQने यह आप्त की मीमांसा कही है, जो कि सम्यक् और मिथ्या उपदेश के अथर् विशेष को समझने के लि् ए है। विशेष- अ°सहœी ग्रांथराज के कुछ सरल और मधुर प्रकरणें को सार™प म्ें समझाने का

प्रयास किया गया है, जो विशेष जिज्ञासु हQ उन्हW हिन्दी अनुवाद सहित अ°सहœ ी का स्वाध्याय करना चाहिए। स्याद्वाद के रहस्य को समझने के लिए यह एक अनूठा ग्रांथ है। अ°सहœ ी ग्रांथराज का महत्व श्रीमदुमास्वामी आचायर् ने तòवाथर्सूत्र की रचना की आदि म्ें "मोक्षमागर्स्य ने तारं भेत्तारं कमर्भूभृतां। ज्ञातारं विÕ ातòवानां वंदे तद्गुणलब्धये।।" इत्यादि™प से मं गलाचरण किया है, उसी मंगलाचरण पर आचायर्वयर् श्री समंतभद्रस्वामी ने आप्तमीमांसा न म के स्तोत्र की रचना की है, उसम्ें श्री समंतभद्राचायर् ने दश अध्यायें म्ें मुख्य™प से दश् प्रकार के एकांत का निरसन करके स्याद्वाद की सप्तभंगी प्रि›âया को घटित कया है। उन एक-एक परिच्छेद म्ें मुख्य-मुख्य एकांतें के खण्डन म्ें उभयैकात्म्य तथा अवाच्य का खण्डन करते हुए 'विरोधाV ोभयैकात्म्यं' इस कारिका को प्रत्येक स्वाध्याय म W लिया है अत: यह कारिका दस बार आ गई है। जैसे प्रथम अध्याय म्ें मुख्यता से भावैकांत-अभावैकांत का खंडन है पुन: उभयैकात्म्य का खंडन एवं अवाच्य का खण्डन करते हुए विरोधाV ोभयैकात्म्यं" इत्यादि कारिका की गई है। पुन: कथंचित् भाव-कथंचित् अभाव को सिद्ध करके सप्तभंगी प्रि›âया घटित की है तथा इस भाव-अभाव के खण्डन म्ें अनेक अन्य वि षय भी स्प° किये हQ। द्वितीय म्ें एकत्व पृथक्त्व को एकांत से न मानकर प्रत्येक वस्तु कथंचित् एकत्व पृथक्त्व ™प ही है यह प्रगट किया है। तृतीय परिच्छेद म्ें नित्यानित्य को दिखाया है, चतुथर् म्ें भेदाभेदात्मक वस्तु को बताया है, पाँचव्ें म्ें कथंचि त् आपेक्षिक-अनापेक्षिक ™प वस्तु को सिद्ध किया है, पुन: छठे म्ें हेतुवाद आगम व् â ो स्याद्वाद से सिद्ध करके सातव्ें म्ें अंतस्तòव-बहिस्तòव का अनेकांत बताया है, आठव्ें म्ें दैव पु®षाथर् को स्याद्वाद से प्रगट करके नवम्ें म्ें पुण्य-पाप का अनेवंâ ात उद्योतित किया है, दशव्ें म्ें ज्ञान-अज्ञान से मोक्षबंध की व्यवस्था को प्रकाशित किया है। स्याद्वाद और नयें का उत्तम रीति से वणर्न किया है। तात्पयर् (११७)

वीर ज्ञानोदय ग्रांथमाला देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) यही है कि इस अ॰सहœ ी ग्रांथ म् ें जिस रीति से स्याद्वाद का वणर्न प्रत्येक स्थान पर किया गया है वैसा वणर्न अन्यत्र न्यायग्रांथें म् ें कहाR पर भी नहाR है, प्रत्येक अध्याय म् ें सप्तभंगी प्रिय़ âया बहुत ही अच्छी मालूम पाेडती है। अंत म् ें आचायर् नेयह बताया है कि मोक्षाभिलाषी भव्य जीवें के लिए यह आप्त- मीमांसा-सवर्ज्ञ विशेष की परीक्षा की गई है क्येंकि मुख्य™प से मोक्ष ही हित ™प है और उसकी प्रि प्त के कारणभूत रत्नत्रय भी हित ™प माना गया है अत: सम्यक्त्व और मिथ्यात्व विश ष का ज्ञान कराने के लिए यह आप्तमीमांसा प्रधान ग्रांथ है क्येंकि सत्य-असत्य तò व का एवं आप्त का पूणर्तया निणर्य हो जाने के बाद ही यह जीव असत्य को छोाेडव् âर सत्य मागर् का या सत्य आप्त का आश्राय लेता है। अत: यह अ॰सहœ ी ग्रांथ आहËत्य लक्ष्मी को परिसमाप्ति-प्राप्ति पयËत स्वाथर्संपत्ति को सिद्ध करने वाला है इसलिए शाŒ ा की आदि म् ें स्तुति किये गये आप्त ही मोक्षमागर् के प्रणेता कमर्भूभृद्ध् त्ता और विÕ ातòवें के ज्ञाता सिद्ध हुए अर्हंत भगवान् ही निर्दोष आप्त हQ उन्हाR के गुणें क प्राप्त करने के लिए उन्हW ही नमस्कार करना उचित है अन्य को नहाR। श्रोतव्या॰सहœ ी श्राुतै: किमन्यै: सहœ ासंख्यानै:। विज्ञायेत् ययैव स्वसमय परसमय सद्भाव:।। स्वयं विद्यानंदि आचायर्वयर् ए ेसा कहते हQ कि एक अ॰सहœ ी ग्रांथ को ही सुनना चाहिए, अन्य हजारें ग्रांथें के सुनने से क्या प्रयोजन है ? क्येंकि इस एक ग्रांथ के द्वारा ही स्वसमय-अपने स्याद्वाद जैन सिद्धांत और परसमय-पर परिकल्पित अनेक एकांत तòवें को समझ नहाR ल् ेंगे तब तक हम अपना सिद्धांत भी अत्यंत सूक्ष्मतया स्याद्वाद की कसौटी पर कस नहाR सव् ें âगे और जब तक सप्तभंगी स्याद्वाद प्रिय़ âया से हम अपने तòवें को नहाR समझ ल् ेंगे, तब तक एकांतवाद के किसी प्रवाह म् ें बहने का डर बना ही रहेगा। आगम और तवर्क दोनें की कसौटी पर कसा गया तòव ही शुद्ध, सत्य सिद्ध होता है अन्यथा नहाR। केवल सिद्धांत अथवा केवल अध्यात्म ™प आगम से जाना गया तòव कदाचित् बेमालूम ही एकांत के ग े म् ें डाल सकता है किन्तु आगम और तवर्क दोनें के द्वारा समझा गया तòव सम्यक् श्राद्धान से कथमपि च्युत् नहाR कर सकता। श्रीसमंतभद्राचायर्वयर् ने अपनी रचनाआW को भगवान की स्तुति का ™प देते हुए प्रौाेढतया न्याय के ग्रांथ ™प बना दिया है यह विशेषता केवल एक समंतभद्रस्वामी म् ें ही थी कि न्यायपूणर् शब्दें के द्वारा निर्भीकतया भगवान के साथ भी वातार्लाप करते हुए उन्हाR सवर्ज्ञ भगवान की भी परीक्षा करने का साहस कर डाला है। सो ठीक ही है क्येंकि जब उन्हेंने स्वयंभूस्तोत्र की रचना के द्वारा भगवान चन्द्रप्रभु को ही प्रगट कर लिया था, तब उनका इस पद्धति से भगवान को ही न्याय की कसौटी पर कस देना कोई बाेडी बात नहाR है। सचमुच म् ें यह कोई साधारण व्यक्ति का काम नहाR कि भगवान की परीक्षा शु™ कर देवे। श्रीसमंतभद्र जैसे

महान मुनिपुंगवें का ही यह काम है। इस ग्रांथ म्ें भगवान को ही निर्दोष आप्त सिद्ध करके अंत म्ें यह बतलाया है कि- इतीयमाप्तमीमांसा विहिताहितमिच्छता। सम्यग्मिथ्योपदेशाथर् - विशेषप्रतिपत्तये।।११४।। अथार्त् यह आप्त की मीमांसा-परीक्षा हित-मोक्षसुख की इच्छा करने वाले भव्य पु®षें के लिए ही की गई है क्येंकि सम्यक् और मिथ्या उपदेश विशेष की जानकारी होने से मिथ्यात्व का त्याग और सम्यक्त्व का ग्राहण शक्य है अन्यथा नहाR। अपने जैनसिद्धांत के ही एक-एक कण™प एक-एक अंश को लेकर मिथ्यावादी जन हठाग्राही बन जाते हQ, वे अपेक्षावाद कथंचित्वाद™प सिद्धांत को नहाR समझ पाते हQ। एक-एक के आग्राह से ही नित्यैकांतवादी, क्षणिवैâकांतवादी आदि बनजाते हQ। जैसे सूक्ष्मत्र+जुसूत्र नय से हमारे यहाँ प्रत्येक वस्तु अथर्पयार्य ™प से प्रतिक्षण होने वाली अथर्-पयार्य एक समयवर्ती क्षणिक है किन्तु यह नय अन्य नयें से सा पेक्ष होने से ही सम्यग्नय है। यदि वह अन्य नयें की अपेक्षा न करे तो मिथ्या नय है इसी एक नय के हठाग्राही बौद्धजन हQ जिन्हेंने अपना क्षणिकसिद्धांत ही बना लिया है इत्यादि। इन सब एकांतें का खण्डन करके यह अ°सहœी ग्रांथ अपने स्याद्वाद को पद-पद पर पु° करता है अतएव आचायर् विद्यानंदि महोदय ने यह श्लोक साथर्व â ही दिया है कि-इसी एक ग्रांथ से ही सभी स्वसमय और परसमय का ज्ञान हो जाता है। अत: इसका अ°सहœी महान ग्रांथ साथर्क ही नाम है। इसम्ें ११४ कारिकाआW से श्री समंतभद्राचायर्वयर् ने देवागम स्तोत्र रचना की है उस स्तोत्र के ऊपर श्रीभóाकलंकदेव ने अ°शती नाम से ८०० श्लोक प्रमाण म्ें टीका की है पुन: उस अ°शती सहित देवागम स्तोत्र की श्री विद्यानंदि स्वामी ने ८००० (आठ हजार) श्लोक प्रमाण से अ°सहœी नाम की टीका की है इसका नाम आपने क°सहœी भी दिया है, क्येंकि न्याय के प्रत्येक प्रकरण इसम्ें बहुत ही क्लि° और जटिलहQ, बांडे ही क°साध्य हQ तथा आपने इसे ‘अभी°सहœाIR पुष्यात्’ कहा है कि यह ग्रांथ नित्य ही हजारें मनोरथें को पु° करे। अत: इस अ°सहœी ग्रांथराज का नित्य ही मनन करना चाहिए तथा देवागम स्तोत्र को भी नित्य ही पांढना चाहिए। इस स्तुति के प्रसाद से ही इसका अथर् समझ सव्ेंâगे। (११९) (१२०)

पाठ-स्रोत: दिगम्बर जैन ग्रन्थ संग्रह (डिजिटाइज़्ड मूल पाठ) · CC BY-NC-SA 4.0
यह मूल पाठ है — अर्थ/टीका सम्मिलित नहीं। अशुद्धि दिखे तो GitHub पर shastra/devaagamastotra.md सुधारें।